Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education

Vol. IV, Issue VIII, October-2012, ISSN 2230-7540

REVIEW ARTICLE

दलीय नेतृत्व के स्रोत तथा स्वरूप

www.ignited.in

Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. IV, Issue VIII, October-2012, ISSN 2230-7540

दलीय नेतृत्व के स्रोत तथा स्वरूप

Mamta Devi[1] Dr. R. P. Panday[2]

[1]Research Scholar, Singhaniya University, Pachari Bari, Jhunjhunu, Rajasthan, India

[2]Associtae Prof. A. K. P. G. College, Shikohabad, Agra (U.P.)

---------------------------♦----------------------------

19वीं शताब्दी में राजनीतिक चिन्तन में सामजिक वर्ग विभेद और समूह संघर्ष के अध्ययन को प्रधानता मिली थी और ठीक उसी प्रकार 20वीं शताब्दी विश्लेषण को सर्वाधिक महत्व मिला। आधुनिक राजनीतिक विश्लेषण में नेतृत्व के अध्ययन पर बहुत अधिक जोर दिया जा रहा है। जबकि 18वीं शताब्दी में राजनीतिक विश्लेषण की मुख्य विशेषता सम्प्रभुता और प्रत्यक्ष लोकतन्त्र के अध्ययन पर जोर अधिक दिया जाता था।

राजनीतिक शक्ति को प्राप्त करने में नेतृत्व का विशेष स्थान होता है। वर्तमान समाज में हमारी सामाजिक राजनैतिक व्यवस्था प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से नेतृत्व पर ही आधारित है। समाज में ऐसे व्यक्तियों की संख्या बहुत कम होती है जिनमें किसी विषय पर स्वयं निर्णय लेने की अथवा परिस्थितियों का पूर्वानुमान करने की क्षमता है। प्रत्येक समुदाय में अधिकांश नागरिक उन थोड़े से व्यक्तियों का अनुसरण मात्र करते है, जिनमें नेतृत्व की क्षमता होती है। जे0वी0 चिताम्बर का कथन है, "प्रत्येक समाज की शक्ति संरचना के अन्तर्गत कुछ व्यक्ति इतने शक्तिशाली तथा सूझ–बूझ वाले होते हैं जो दूसरे को प्रोत्साहन, प्रेरणा तथा मार्गदर्शन देकर उनकी क्रियाओं को प्रभावित करते हैं। इसी विशेषता को हम नेतृत्व कहते है। जबकि ऐसे व्यक्तियों को नेता, शक्ति धारक, शक्ति सम्पन्न मानव शक्ति केन्द्र अथवा शक्तिशाली अभिजन कह सकते है।" तात्पर्य यह है कि जिन व्यक्तियों में एक विशेष समूह अथवा समुदाय की समस्याओं को समझने और उनका समाधान करने की अधिक क्षमता होती है वे स्वाभाविक रूप से एक छोटे अथवा बड़े क्षेत्र का नेतृत्व करने लगते हैं। इसी दृष्टिकोण से नेतृत्व को एक सामाजिक राजनीतिक तथ्य कहा जाता है। इसका अभिप्राय है कि जिस व्यक्ति में नेतृत्व के गुण होते हैं उनसमें अनुसरण करने के गुण भी पाये जाते हैं, लेकिन जब अनुसरण करने की अपेक्षा व्यक्ति की नेतृत्वशील प्रवृत्ति में नेता की प्रास्थिति प्राप्त कर लेता है। लोकतांत्रिक समाजों में आज समाजशास्त्रियों, राजनीतिशास्त्रियों तथा मनोवैज्ञानिकों की रूचि नेतृत्व के अध्ययन के प्रति निरन्तर बढ़ती जा रही है, लेकिन नेतृत्व के संदर्भ में अध्ययन करने वाले विद्वानों की संख्या अपेक्षाकृत रूप से आज बहुत कम है। यहाँ शोधर्थिनी का उद्देश्य नेतृत्व की अवधारणा को स्पष्ट करने के साथ ही यह देखना भी है कि परम्परागत नेतृत्व की तुलना में आज नेतृत्व से सम्बन्धित कौन–सी नवीन प्रवृत्तियाँ जन्म ले रही है तथा उन्होंने राजनीतिक जीवन को किस प्रकार प्रभावित किया है ?

नेतृत्व के अध्ययन का महत्व –

आधुनिक युग में तथा राजनीतिक चिन्तन में नेतृतव की अवधारणा के कई कारण है।

(1) वर्तमान समय में सभी प्रकार की राजनीतिक व्यवस्थाओं में संकट और संघर्ष की स्थिति दिखलाई देती है। इस संकट और संघर्ष के समाधान के लिये देश की जनता नेतृत्व की ओर देखती है।

(2) आधुनिक युग में संसदात्मक संस्थाओं का संघर्ष समाधान केन्द्रों के रूप में महत्व आम होता जा रही है और कार्यपालिकीय नेतृतव का महत्व इस परिप्रेक्ष्य में बढ़ता जा रहा है।

(3) संसदात्मक प्रणाली वाले देशों में प्रधानमंत्री न केवल मंत्रिमण्डल अपितु राज्य के जननेता के रूप में उदित हाते जा रहे हैं।

(4) आधुनिक राजनीतिक दलों में केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है और केन्द्रीय नेताओं के महत्व में पर्याप्त वृद्धि हो गयी है। इस कारण दल प्रणाली में राजनीतिक नेतृत्व भी अध्ययन का एक प्रमुख कारक हो जाता है।

(5) आधुनिक व्यवस्थाओं में नेताओं द्वारा संचार के साधनों के माध्यम से जनता की अबुद्धिवादिता का लाभ उठाया जाता है।

(6) विकासशील देशों में व्यवसायिक राजनीतिज्ञों का शासन में प्रभुत्व बढ़ता जा रहा है। आज जनता की भूमिका मतदाता, सार्वभौमिक सम्प्रभु तथा राजनीतिक लाभों की उपयोगिता के रूप में परिवर्तित हो गयी है। आज जनता सभी देशों में मुख्य कार्यपालिका के साथ प्रत्यक्ष तथा अन्तः क्रियात्मक सम्बन्ध स्पोषित करना चाहती है। इन सभी कारणों से आधुनिक शासन व्यवस्थाओं में कार्यपालिका की शक्ति में वृद्धि होती जा रही है।

नेतृत्व का आशय –

सामान्यतया नेतृत्व से आशय उस योग्यता से लगाया जाता है जो अन्य लोगों में एक सामूहिक उद्देश्य को अपनाने की इच्छा जाग्रत करती है। टीटु के अनुसार, "नेतृत्व उन गुणों के संयोग का नाम है जिनको रखने पर कोई वयक्ति अन्य व्यक्तियों से काम लेने के योग्य होता है। विशेषकर उनके प्रभाव द्वारा अन्य लोग स्वेच्छा से कार्य करने के लिये तैयार हो जाते हैं।"

राजनीति में नेतृत्व सम्बन्धी जो भी अध्ययन् किये हैं उनमें नेतृत्व को लेकर अनेक धारणायें स्थापित की गयी हैं। मोटे रूप से सामने आती हैं। (1) पहली धारणा के अनुसार नेतृत्व से विभिन्न

www.ignited.in

परिस्थितियों एवं स्थानों की अगुवाई करने वाले उन लोगों का बोध होता है जो अन्य लोगों की अगुआई स्थिति, व्यक्तित्व व कार्य के कारण करते हैं। इस धारणा के अनुसार नेतृत्व किसी व्यक्ति की अर्न्तनिहित विशेषताओं पर निर्भर करता है। (2) दूसरी धारणा जो पारम्परिक धारणा है, के अनुसार नेतृत्व का आधार कुछ विशेष व्यक्तिगत विशेषताएँ है जिनको साधारणता से अलग नहीं किया जा सकता हैं। इस विचार के अनुसार, नेतृत्व का गुण प्राकृतिक है और सभी लोगों में यह मौजूद नहीं रहता। मैक्सवेबर की करिश्मा प्रधान नेतृत्व की धारणा इस धारणा का प्रतिनिधि उदाहरण है। (3) तीसरी धारणा नेता की भूमिका पर आधारित है।

जहाँ तक प्रथम धारणा स्थिति, व्यक्ति व कार्य पर आधारित धारणा का प्रश्न है, यह आधुनिक जनतांत्रिक चिन्तन एवं शोध का परिणाम है। इस धारणा के अनुसार, नेता के तीन वर्ग है, पहले वर्ग में वे नेता आते हैं जो अपनी स्थिति के कारण लोगों की अगुवाई करते है, जैसे राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, वयापारिक व सरकारी निगमों के सभापित आदि। दूसरे वर्ग में आने वाले नेताओं में वे लोग हैं जो अपने व्यक्तित्व के कारण लोगों की अगुआई करते हैं। उदाहरण के लिये राष्ट्रपतियों, प्रधानमंत्रियों, व्यापारिक व सरकारी निगमों के सभापतियों में सभी सफलतापूर्वक लोगों की अगुआई नहीं कर पाते हैं ऐसे लोगों में कुछ लोग ही, जैसे विस्टन चर्चिल, रुजवेल्ट, नेहरू इत्यादि ही सफल नेता सिद्ध हो सके हैं। इनकी सफलता के लिये इनके व्यक्तिव को ही अधिक महत्व दिया जाता है। नेताओं के तीसरे वर्ग में वे लोग आते हैं जो अपने कार्यों के चलते लोगों की अगुआई करते हैं। ऐसे लोगों के लिये स्थिति एवं व्यक्तित्व का उतना महत्व नहीं हैं। मेरी पार्कर फालटे ने इस प्रकार के नेताओं पर अधिक बल दिया है। उसने अमेरिकन राजनीतिक तथा प्रशासनिक क्षेत्रों में अवस्थित इन लोगों की चर्चा करते हुए कहा था। "हम लोगों के बीच ऐसे भी लोग है जो अपने से वरिष्ठ लोगो को आदेश देते हैं। किरानी भी अपने कार्य के महत्व के आधार पर अपने कार्यालय अधीक्षक को ऐसी सलाह दे सकता है जो आदेश के समान हो।" स्थिति पर आधारित नेतृत्व का आधार परिस्थिति द्वारा उत्पन्न आवश्यकताओं का ज्ञान है। वस्तुतः लोक प्रशासन के क्षेत्र में वास्तविक 6 जटिलताओं का विशेषज्ञ होता है। वह व्यक्ति जो यह जानता है कि विशेष परिस्थिति में क्या करने की आवश्यकता है। नेतृत्व सम्बन्धी धारणा नेताओं व अनुयायियों की भूमिका पर आधारित है। इस आधार पर कार्ल जे फ्रेडरिक ने नेतृत्व को तीन रूपों में प्रदर्शित किया है, आरम्भक, संपोषक तथा संरक्षक। आरम्भक या प्रवर्तक नेता उस व्यक्ति को कहा जाता है जो राजनीतिक क्रियाओं की नई रीतियों का प्रारम्भ करता है और पुनः अनुयायियों को वे क्रियायें करने के लिये प्रेरित करता है। ऐसा व्यक्ति विजेता, विधिकर्त्ता तथा नये उद्योगों का साझी संस्थापक हो जाता है। ऐसे नेताओं का वर्णन लोककथाओं तथा लोकगीतों में मिलता है। ऐसा नेता स्थापित मूल्यों को तोड़कर नये मूल्यों की स्थापना करता है। इसके विपरीत, संपोषक नेता स्थापित मूल्यों और मान्यताओं का संपोषण करता है। वह राजनीतिक कार्यकलापों से सम्बद्ध प्राचीन, सर्वविदित व सर्वमान्य विधियों की पुनः स्थापना करता है। उसके अनुयायियों की भूमिका आज्ञा पालन की भूमिका है। उसके अनुयायी आज्ञा का पालन करते हुए स्थापित सरकार एवं राजनीतिक मूल्यों के साथ अपने को सम्बद्ध करते हैं। इस प्रकार के नेताओं का व्यक्तित्व सत्तावादी होता है, क्योंकि वे अपने अनुयायियों से जिन वस्तुओं की आकांक्षा करते हैं वे वस्तुयें समुदाय के स्थापित मूल्यों, विश्वासों तथा हितों पर आधारित होती है। इन दोनों के विपरीत संरक्षक नेता अपने अनुयायियों की सुरक्षा का दायित्व लेता है। यह सुरक्षा न केवल शारीरिक हानि के विरूद्ध होती है बल्कि यह जीने की विशेष पद्धति, विश्वास, मूल्य तथा हितों की होने वाली हानि के विरूद्ध भी होती है। उसके अनुयायियों की भूमिका जय घोषणा करने वालों की भूमिका होती है। वे अपनी सुरक्षा के बदले नेता की माँगे सहर्ष स्वीकार करते हैं तथा उसके उन कार्यों में योगदान करते है, जिनसे उनकी सुरक्षा बनी रहती है। हाब्स के 'स्मअगंजींद' में इसी प्रकार के नेतृत्व की कल्पना की गयी है। फ्रेडरिक का कहना है कि उपर्युक्त तीनों प्रकार के नेताओं की सत्ता अनुयायियों के नेताओं की सत्ता अनुयायियों की सहमति पर आधरित है। इसलिये इन नेताओं की शक्ति वस्तुतः सहमति जन्य शक्ति है।

नेतृत्व की अवधारणा –

नेतृत्व को शाब्दिक रूप से नेता का तात्पर्य किसी भी ऐस व्यक्ति से समझा जाता है जो मार्गदर्शक मुखिया किसी विषय में कुशल, आज्ञा देने वाला अथवा व्यवहार कुशल हो। लोकतांत्रिक दृष्टिकोण से नेतृत्व का अर्थ ऐसी स्थिति में समझा जाता है जिसमें कुछ व्यक्ति स्वेच्छा से किसी दूसरे व्यक्ति के आदेशों का पालन कर रहे हो। यदि हम व्यक्ति में शक्ति के आधार पर अन्य व्यक्तियों से इच्छित व्यवहार करा लेने की क्षमता है तो इसे भी नेतृत्व की अवधारणा के अन्तर्गत सम्मिलित कर लिया जाता है। वास्तव में यह सभी अर्थ अत्यधिक संकुचित हैं। व्यावहारिक रूप से नेतृत्व व्यवहार का कई ढंग है, जिसमें एक व्यक्ति दूसरों के व्यवहार से प्रभावित होने की अपेक्षा अपने व्यवहार से दूसरे व्यक्तियों को अधिक प्रभावित करता है। यह कार्य चाहे दबाव के द्वारा किया गया हो अथवा व्यक्तित्व सम्बन्ध गुणों के द्वारा दर्शाकर।

शोधार्थी ने नेतृत्व की अवधारणा को कुछ परिभाषाओं के माध्यम से दर्शाया है। नेतृत्व की परम्परागत विचारधारा के अनुसार नेतृत्व एक दुर्लभ तथा प्राकृतिक उपहार है।

यूनानी चिन्तक अरस्तु के अनुसार, "कुछ व्यक्ति जन्म से ही शासित तथा कुछ व्यक्ति जन्म से ही शासित होने के लिए पैदा होते हैं जो न केवल प्राकृतिक हैं बल्कि आवश्यक भी है।" अरस्तु की यह विचाारधारा मानती है कि नेतृत्व व्यक्ति का निजी गुण है जो व्यक्ति के व्यक्तित्व में दृष्टिगोचर होता है। यह विचारधरा 'भाग्यशाली व्यक्ति' (डमद व ि क्मेजपदल) की अवधारणा को जन्म देती है। इसी प्रकार विचारधाराओं का सहारा लेकर नीत्शे के सिद्धान्त में अति शक्तिशाली पुरुष का जन्म होता है। इसी से आगे चलकर नेपोलियन बोनापार्ट तथ हिटलर जैसे अधिनापरवादी नेतृत्व का जन्म होता है।

पिंगर के अनुसार – नेतृत्व, व्यक्ति और पर्यावरण के सम्बन्धों को स्पष्ट करने वाली एक धारणा है। यह उस स्थिति की विवेचना करती है जिसमें एक व्यक्ति ने एक विशेष पर्यावरण के अन्तर्गत इस प्रकार स्थान ग्रहण कर लिया हो कि उनकी इच्छा, भावना और अर्न्तदृष्टि किसी सामान्य लक्ष्य को पाने के लिये दूसरे व्यक्तियों को अनुशासित करती है व उन पर नियन्त्रण रखती है।" इस परिभाषा को समीकरण के रूप में भी व्यक्त किया जा सकता है जो निम्न प्रकार है –

विशिष्ट पर्यावरण + व्यक्ति की स्थिति ग निर्देश = नेतृत्व

इसका अर्थ यह है कि व्यक्ति एक विशेष पर्यावरण में जिसमें आर्थिक, धार्मिक व राजनीतिक शिक्षा सम्बन्धी व मनोरंजन व और भी क्षेत्र हो सकता है, जब एक विशेष स्थान प्राप्त कर लेता है, तो वह अपने गुणों एवं क्षमता के द्वारा दूसरे व्यक्तियों

www.ignited.in

के व्यवहारों को प्रभावित करने लगता है। यही स्थिति नेतृत्व की स्थिति कहलाती है।

लेपियर तथा फार्न्सवर्थ के अनुसार – "नेतृत्व वह व्यवहार है जो दूसरे लोगों के व्यवहारों को उससे कहीं अधिक प्रभावित करता है जितना कि दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार नेता को प्रभावित करते हैं।" इस प्रकार लेपियर ने नेतृत्व को नेता और उसके अनुयायियों के बीच पाये जाने वाले सम्बन्धों के आधार पर स्पष्ट किया है। एक नेता केवल अनुयायियों के व्यवहारों को प्रभावित ही नहीं करता, बल्कि उनके व्यवहारों से स्वयं भी प्रभावित होता है, किन्तु जब नेता का प्रभाव तुलनात्मक रूप से अधिक हो जाता है तभी उसके व्यवहार को नेतृत्व के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है।

सैण्डरसन के मतानुसार – "सामुदायिक संगठन के प्रयोजन हेतु, वह एक ऐसा व्यक्ति होता है जो उस संगठन के लक्ष्य तथा उद्देश्य को शेष लोगों की अपेक्षा पहले देखता है तथा अपने कार्यक्रम का आयोजन करता है और उसमें अन्य लोगों को सम्मिलित करता है।

सीमेन तथा मॉरिस के अनुसार – "नेतृत्व का तात्पर्य एक व्यक्ति द्वारा किये जाने वाले उन कार्यों से है, जो इसके व्यक्तियों को एक विशेष दिशा में प्रभावित करते है।" इससे ज्ञात होता है कि दूसरे व्यक्तियों के व्यवहारों को प्रभावित कर लेना है। नेतृत्व नहीं है बल्कि नेतृत्व का तात्पर्य उनके व्यवहारों को एक निश्चित अथवा इच्छित दिशा की ओर मोड़ना है।

ओ0 टीड ने लिखा है – "नेतृत्व एक ऐसी क्रिया है जिसके द्वारा वांछित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये लोगों को सहयोग देने के लिये प्रभावित किया जा सके।" उदाहरण के लिये ग्राम एक सामाजिक इकाई है जिसमें एक अथवा अनेक ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता होती है जो अन्य व्यक्तियों के सामने उनके लक्ष्यों का निर्धारण कर सके तथा उनको प्राप्त करने के लिये सभी लोगों को मिल–जुलकर कार्य करने की प्रेरणा दे सकें। टीड के अनुसार, "प्रभाव के इसी प्रतिमान को हम नेतृत्व कह सकते हैं।"

नेतृत्व की प्रकृति –

नेतृत्व की प्रकृति को स्पष्ट करने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि नेतृत्व व प्रभुत्व के अन्तर को स्पष्ट कर लिया जाये।

किम्बाल यंग के शब्दों में – "प्रभुत्व को शक्ति के एक ऐसे साधन के रूप में देखा जा सकता है जिसका एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति की मनोवृत्तियों और क्रियाओं को नियंत्रित करने व उन्हें बदलने के लिये किया जाता है।" इस दृष्टिकोण से प्रभुत्व में शक्ति अथवा सत्ता का तत्व आवश्यक रूप से जुड़ा हुआ रहता है। प्रभुत्व द्वारा व्यक्तियों के व्यवहारों में जो बदलाव लाये जाते हैं वह साधारणतया दबाव के द्वारा होते हैं। इसके विपरीत नेतृत्व व्यक्तियों के व्यवहारों में जो परिवर्तन उत्पन्न करता है वह ऐच्छिक होता है। उदाहरण के लिये यदि एक अधिकारी अपने कार्यालय में दूसरे कर्मचारियों के व्यवहारों में इच्छित बदलाव करता है तो उसे प्रभुत्व को बिना किसी घनिष्ठता और त्याग के भी बनाये रखा जा सकता है। एण्डरसन का कथन है कि नेतृत्व से सम्बन्धित व्यवहार साधारणतया प्रगतिशील होते हैं जबकि प्रभुत्व में रूढ़िवादी तत्व अधिक होते हैं। इसके उपरान्त भी यह स्वीकार करना होगा कि नेतृत्व और प्रभुत्व को पूरी तरह एक से एक दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता। इसका कारण यह है कि नेतृत्व में भी कुछ व्यक्ति नेता के अनुयायी होते हैं और प्रभुत्व में भी कुछ व्यक्तियों को किसी व्यक्ति के अधीन रहकर कार्य करना पड़ता है। इसी आधार पर किम्बाल यंग ने लिखा है जिसे हम साधारणतया नेतृत्व कहते हैं। उसका वर्णन सही तौर पर प्रभुत्व के रूप में ही किया जाना चाहिये।

नेतृत्व का सिद्धान्त –

राजनीतिक नेतृत्व का कोई सिद्धान्त नहीं दिया जा सकता क्योंकि यह एक विवादित विषय है, जैसे – लोकतंत्र में किस सीमा तक नेतृत्व व्यक्ति को स्वतंत्र तथा लोकतांत्रिक बन रहने देता है। नेतृत्व व्यक्ति/ अनुयायियों को प्रेरित जाग्रत करता है अथवा उनको दमन पूर्वक अनुयायी बनाता है और नेतृत्व के स्रोत क्या है ? अर्थात नेतृत्व कहाँ से पैदा होता है ? अतंतः नेतृत्व की चार अन्तर्विरोधी सिद्धान्तों की पहचान की जा सकती है।

1. नेतृत्व (व्यक्तिगत उपहार के रूप में) स्मंकमतीपच ` ` च्मतेवदंस ळपजि

2. नेतृत्व (एक सामाजिक परिघटना के रूप में) स्मंकमतीपच ` ``वबपवसवहपबंस चीमदवउमदवदद्ध

3. नेतृत्व (एक संगठनात्मक आवश्यकता के रूप में) स्मंकमतीपच ` `द वतहंदपेंजपवदंस छमबमेपजलद्ध

नेतृत्व के चार मुख्य घटक हैं जैसे नेता, अनुगामी, परिस्थिति एवं कार्य।

नेता – प्रत्येक समूह का एक नेता है जो समूह के लोगों के साथ विभिन्न समसयों में अन्तःक्रिया करता है और उससे सम्बन्ध स्थापित करता है। वह समूह के लिये विभिन्न प्रकार के कार्य करता है। इसका यह अर्थ नहीं कि जिस प्रकार का कार्य नेता करता है, समूह के दूसरे व्यक्ति नहीं कर सकते।

नेतृत्व का कार्य समूह के सदस्यों में विभाजित किया जा सकता है, किन्तु विशिष्ट रूप से उन्हें पूरा करने का भार नेता पर ही होता है। किसी भी समूह के नेता की पहचान करने के अनेक मार्ग है। जिसमें समाजमिति भी एक है। नेता ज्यादा कुशल, योग्य, अनुभवी एवं बुद्धिमान होता है इसलिए वह समूह में अनेकों व्यक्तियों की तुलना में प्रभावी होता है।

अनुगामी – समूह में नेता के अतिरिक्त वे व्यक्ति होते हैं जो नेता का अनुगमन करते हैं। उन्हें अनुगामी कहते हैं। बिना अनुगामी के कोई नेता नहीं हो सकता। अतः जब तक ऐसे कुछ व्यक्ति नहीं होंगे जो एक व्यक्ति के लिये मानें या उसका अनुगमन करें तब तक नेतृत्व उत्पन्न नहीं होगा। सामान्य उद्देश्य की प्राप्त के लिये यह महत्वपूर्ण है कि नेता व अनुगामियों में सक्रिय अन्तःक्रिया हो। उद्देश्य की प्राप्ति एवं आन्दोलन के लिये यह भी जरूरी है कि अनुगामी अपने नेता का नेतृत्व स्वीकार करें और नेता अनुगामियों की अपेक्षाओं के अनुसार कार्य करें। अनुगामी अपने नेता के व्यवहार से अधिक प्रभावित होते हैं।

परिस्थिति – नेता और अनुयायी किसी परिस्थिति में ही अन्तः क्रिया करते है। परिस्थिति में हम मूल्यों व अभिवृत्तियों को सम्मिलित करते हैं। नेता व उसके अनुगामियों को अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये सामाजिक मूल्यों एवं अभिवृत्तियों को ध्यान में रखकर ही योजना बनानी होती है। हम परिस्थिति में कुछ पक्षों को गिन सकते हैं, जैसे (1) समूह के लोगों के पारस्परिक सम्बन्ध (2) समूह की इकाई होने के नाते विशेषतायें (3) समूह के सदस्यों की संस्कृति की विशेषतायें (4) भौतिक परिस्थितियों, जिसमें समूह क्रियाशील होना है, (5) सदस्यों के मूल्य, अभिवृत्तियों व विश्वास इत्यादि। परिस्थिति का समूह के नेतृत्व निर्धारण में महत्वपूर्ण स्थान होता है। दरअसल, राजतंत्र की विदाई के बाद प्रत्येक समाज में एक राजनीतिक शून्य पैदा हो जाता है। यह मानना उचित नहीं है कि सामान्य नागरिक इस शून्य को अपने आप यानि बिना किसी समक्ष नेतृत्व के भर सकते हैं। यह सच है कि देश की प्रभुसत्ता उन्हीं में निहित होती है यानि वे ही देश के वास्तविक राजा है। किन्तु उनकी यह चेतना आमतौर पर सूखे काठ में अग्नि की तरह सोयी रहती है। इस सुप्त चेतना को जगाने और संघर्ष तथा रचना की दिशा में मोड़ने का काम जागरूक नेतृत्व का है। गाँधी जी ऐसे ही नेता थे।

कुछ समय तक जवाहर लाल नेहरू तथा साम्यवादी और समाजवादी नेताओं ने भी यह काम किया। इस तरह के आखिरी नेता शायद जयप्रकाश नारायण थे। देश को मौजूदा राजनीतिक दुश्चक्र से निकालने के लिए आज फिर उसी कद के नेतृत्व की जरूरत है।

कार्य – कार्य के तात्पय उन क्रियाओं से है जो कि समूह द्वारा उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये सामूहिक रूप से की जाती है। कार्य को पूरा करने के लिये नेता से अनेक प्रकार की क्षमताओं की अपेक्षा की जाती है। कार्य की प्रकृति नेता को कार्य करने के लिये प्रेरणा प्रदान करती है।

नेतृत्व की मुख्य विशेषतायें –

शोधार्थी ने नेतृत्व की निम्नलिखित विशेषताओं को दर्शाया है।

(1) **अनुयायियों को एकत्रित करना** – बिना अनुयायियों के नेतृत्व की कल्पना करना दुष्कर है। वास्तव में बिना समूह का कोई अस्तित्व नहीं है, क्योंकि नेता या नायक केवल अनुयायियों व समूह पर ही अपने अधिकार का प्रयोग कर सकता है।

नेतृत्व का उद्देश्य अपने चारों ओर अपने अनुयायियों अथवा व्यक्तियों के समूह को एकत्र करना तथा उन्हें किसी पूर्व निर्धारित सामूहिक उद्देश्य के प्रति निष्ठावन बनाये रखना है।

(2) **आचरण एवं व्यवहार को प्रभावित करना** – नेतृत्व प्रभाव के विचार की अपेक्षा करता है, क्योंकि बिना प्रभाव के नेतृत्व की कल्पना नहीं की जा सकती। नेतृत्व की पूर्ण अवधारणा अब व्यक्तियों के एक–दूसरे के प्रभाव पर केन्द्रित है। लोक प्रशासन में नेतृत्व की भूमिका का सार ही यह है कि कोई अधिशासी किस सीमा तक अपने सहयोगी अधिशासियों के आचरण या व्यवहार को अपेक्षित दिशा में ले जा सकता है। किन्तु इस सम्बन्ध में यह ध्यान रहे कि अन्य व्यक्तियों के आचरण को प्रभावित करने से आशय उनसे अनुचित रूप से कार्य लेने से नहीं है उसका कार्य अपने अधीनस्थ व्यक्तियों का निर्देशन देना तथा उन्हें एक निश्चित ढंग से कार्य करने के लिये प्रेरित करना है ताकि उनमें समझदार स्वहित वाली प्रतिक्रिया स्वतः हो सके।

(3) **पारस्परिक सम्बन्ध** – मेरी पार्कर फालेट ने नेता व अनुयायियों के बीच पारस्परिक सम्बन्ध का नेतृत्व की प्रमुख विशेषता माना है। नेता वही नहीं है जो दूसरों की इच्छा को निर्धारित करता है, किन्तु वह है जो जानता है कि इच्छाओं को किसी प्रकार अन्तर सम्बन्धित किया जाय कि उनमें एक साथ मिलकर कार्य करने की प्रेरणा स्वतः जाग्रत हो सके। इस प्रकार एक नेता न केवल अपने समूह को प्रभावित करता है वरन् वह स्वयं भी अपने समूह द्वारा प्रभावित होता है।

(4) **सामूहिक लक्ष्य** – नेतृत्व की यह प्रकृति है कि वह अपने अनुयायियों के प्रयत्नों को सामूहिक लक्ष्यों या उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु निर्देशत करता है। नेता का यह कर्तव्य है कि वह कुछ लक्ष्यों को स्पष्ट रूप से परिभाषित कर दे जिससे कि अनुयायी इन लक्ष्यों से अपने हितों का एकीकरण कर सके।

इस प्रकार स्पष्ट है कि नेतृत्व में नेता, अनुयायाी, परिस्थिति और कार्य चार महत्वपूर्ण पक्ष है। नेतृत्व किसी एक अथवा कुछ का विशेषाधिकार नहीं कहा जा सकता। लूथर कहते है, "कोई भी व्यक्ति जो साधारण लोगों की तुलना में दूसरों को सामाजिक–मनोवैज्ञानिक प्रेरणा प्रदान करने में दक्ष हो और सामूहिक प्रत्युत्तर को प्रभावी बना देता हो वह नेता कहा जा सकता है। नेतृत्व को और अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिये शोधार्थी ने उसके कतिपय आवश्यक पक्षों पर विचार करने का प्रयास किया है।"

(1) **औपचारिक एवं अनौपचारिक प्रभावों की दृष्टि से नेतृत्व** – औपचारिक एवं अनौपचारिक प्रभावों की दृष्टि से नेतृत्व में अन्तर पाया जाता है, किन्तु नेतृत्व की परिस्थिति में दोनों ही पक्ष सम्मिलित होते हैं। एक औपचारिक परिस्थिति में जो व्यक्ति नेता होता है वह अनौपचारिक भी हो सकता है और इसके विपरीत भी हो सकती है, जब एक औपचारिक नेता अनौपचारिक एवं प्रभावी नेता की उपस्थिति में प्रभावित हो।

(2) **नेतृत्व का निर्धारण मात्रा की दृष्टि से** – नेतृत्व का निर्धारण मात्रा के संदर्भ में भी मापना सम्भव है। एक व्यक्ति अनेक क्षेत्रों में विभिन्न समय में और अनेकों परिस्थितियों में नेतृत्व की अलग–अलग मात्रा को प्रकट कर सकता है। नेतृत्व समूह व समाज के लोगों में विभिन्न मात्रा में विभाजित और वितरित किया जा सकता है। एक ही व्यक्ति सभी स्थितियों व समय में नेतृत्व करे यह आवश्यक नहीं है। अलग–अलग समय व परिस्थितियों में नेता बदल सकते है।

(3) **योग्यता और क्षमता की दृष्टि से नेतृत्व** – जो लोग नेतृत्व करते हैं उनमें कार्य को पूरा करने की प्रभावी योग्यता एवं क्षमता होती है। अनेक कार्यों को पूरा करने तथा विभिन्न समय व परिस्थिति के अनुसार अलग–अलग गुणों वाले नेताओं की आवश्यकता होती है। इसलिये एक ही व्यक्ति सभी परिस्थितियों में सफल नेतृत्व नहीं कर सकता।

(4) **नेतृत्व की विशेषतायें व्यक्तिगत** – नेतृत्व की विशेषतायें व्यक्तिगत होती है। यही कारण है कि एक व्यक्ति एक परिस्थिति में नेता होता है, वह दूसरी में नहीं।

(5) **नेतृत्व का प्रभावपूर्ण कार्य से सम्बन्ध** – नेतृत्व केवल प्रतिष्ठा पद और क्षमता से ही संबंधित नहीं है वरन् इसका सम्बन्ध प्रभावपूर्ण ढंग से कार्य को पूरा करने से भी है।

www.ignited.in

यदि नेता की कोई भी गतिविधि दिखाई नहीं देती है तो हम कहेंगे कि नेतृत्व बड़ा कमजोर है।

(6) नेतृत्व और सामाजिक अन्तःक्रिया – नेतृत्व में सामाजिक अन्तःक्रिया सम्मिलित है जो समूह के सदस्यों में बराबर तथा नेता और अनुयायियों के बीच और व्यक्ति व समूहों के बीच होती है। पिगर का मत है कि नेतृत्व पारम्परिक उत्तेजना की प्रक्रिया है।

(7) नेता का समूह में केन्द्रीय स्थान – नेता का समूह में केन्द्रीय स्थान होता है। कई बार नेता बिना अपने अनुयायियों के सुझाव के ही समूह के लिये कई क्रियाकलाप आरम्भ करता है।

(8) नेतृत्व के प्रभाव से सामूहिक क्रिया – नेतृत्व का प्रभाव यह होता है। कई सारे समूह द्वारा सामूहिक रूप से क्रिया की जाती है।

(9) नेतृत्व की संचयी प्रकृति – नेतृत्व संचयी प्रकृति का है। एक व्यक्ति जब किसी परिस्थिति में अपनी भूमिका निभाता है तो उस पर अनेक प्रकार से दबाव आते हैं।

(10) नेतृत्व औपचारिक अथवा अनौपचारिक – नेतृत्व औपचारिक व अनौपचारिक हो सकता है। समाज की शक्ति संरचना में औपचारिक नेतृत्व का प्रभाव अनौपचारिक की तुलना में प्रायः कम होता है।

(11) नेतृत्व का विस्तृत क्षेत्र – नेतृत्व का क्षेत्र विस्तृत होता है। एक छोटे समूह की क्रियाओं को निर्देशन देने से लेकर सम्पूर्ण राष्ट्र की गतिविधियों तक नेतृत्व का क्षेत्र व्याप्त है।

नेतृत्व के प्रकार –

ओहियो स्टेट विश्वविद्यालय के सेविंग वर्गीय शोध बोर्ड के नेतृत्व में 5 वर्गों में रखा है :–

(1) नौकरशाह – ऐसा नेता केवल निर्धारित दिनचर्या से चिपका रहता है, अपने बड़ो को संतुष्ट करने का प्रयास करता है और अधीनस्थों की उपेक्षा करता है। अधीनस्थ ऐसे नेता के प्रति उदासीनता व अवज्ञा की भावना रखते हैं।

(2) तानाशाह या अधिनायक – ऐसा नेता निर्देशक होता है और सम्मान की अपेक्षा करता है। ऐसा नेता के विरोधी हो जाते हैं व स्वार्थ सिद्धि में लगे रहते हैं।

(3) कूटनीतिज्ञ – ऐसा नेता अवसरवादी नेता है और लोगों का शोषण करता है उसमें लोगों का विश्वास नहीं रहता है।

(4) विशेषज्ञ – ऐसा नेता केवल अपने क्षेत्र से सम्बन्धित होता है। वह अपने अधीनस्थों के साथ सहयोग के रूप में व्यवहार करता है। उसके सहकर्मी उसका सम्मान करते है, किन्तु वे किसी परिवर्तन के विरूद्ध होते हैं।

(5) सहभागी – ऐसा नेता अपने अधीनस्थों के साथ अपना गहरा सम्बन्ध स्थापित कर लेता है, चाहे उसके बड़े अधिकारी उससे अप्रसन्न ही क्यों न हो जाये।

क्रिस एरगाइरिस ने तीन प्रकार के नेताओं में अन्तर स्थापित किया है – निदेशक, अनुज्ञात्मक या अनुमति बोधक तथा सहयोगी।

(1) निदेशक प्रकार का नेता – यह पारिशोषक के साथ–साथ दण्ड की भी व्यवस्था करता है। इसके अधीनस्थ अपने आपको मातहत समझते हैं और इसके कारण निष्क्रिय होते हैं। उनका मनोबल नीचा होता है जिसके कारण नेतृत्व विकसित नहीं हो पाता है।

(2) अनुज्ञात्मक या अनुमति बोधक प्रकार का नेता – ऐसा नेता दूसरे के लिए कार्य की शुरूआत करता है। इसमें सहन शक्ति अत्याधिक होती है। वह दूसरों की भावनाओं के प्रति संवेदनशील होता है। वह निर्धारित कार्य को पूरा तो कर लेता है, किन्तु नेतृत्व का विकास करने मं असफल होता है।

(3) सहयोगी प्रकार का नेता – ऐसा नेता दूसरों में पहल शक्ति, निर्णय लेने की क्षमता तथा कार्य करने की विधियों को विकसित करने में सहायता प्रदान करता है। वह दूसरों को अपनी आवश्यकताओं और उनकी सीमाओं को समझने के अवसर देता है, वह अपनी भावनाओं को स्वतन्त्रतापूर्वक व्यक्त करता है।

हेरी ने नेतृत्व के छः प्रकार बतलाये है – व्यक्तिगत नेतृत्व, अव्यक्तिगत नेतृत्व, आदेशात्मक नेतृत्व, लोकतांत्रिक नेतृत्व, पैतृकवादी नेतृत्व व स्थानीय नेतृत्व। सभी तथ्यों के आधार पर सामान्यतः नेतृत्व के जो प्रकार देखने को मिलते हैं, शोधार्थी ने उनको निम्न खण्डों में विभाजित किया गया है।

(1) अधिनायकीय नेतृत्व – यह एक ऐसा नेतृत्व है जिसके अन्तर्गत अनुयायी भयवश कार्य करते हैं। अधीनस्थ वही कार्य करते हैं जिसके करने के लिए कहा जाता है। एक नेता अपने अधीनस्थों में दण्ड की भावना भर देता है जिससे लोगों में नौकरी के छूटने, पदावनति, मजदूरी में कमी इत्यादि का भय बना रहता है। अस्थाई उपाय के रूप में ऐसे नेतृत्व से कुछ समय के लिए अपेक्षित परिणाम प्राप्त हो जाते हैं किन्तु दीर्घकाल में ऐसा नेतृत्व सफल नहीं हो पाता चूँकि उससे अनुयायियों में असंतोष बना रहता है।

(2) स्वेच्छाधारी नेतृत्व – स्वेच्छाधारी नेतृत्व अधिनायकवादी नेतृत्व से इस अर्थ में अलग है कि यह अपने अधीनस्थों की आवश्यकताओं को संतुष्ट करने के अवसर प्रदान करने के लिए तैयार रहता है, यदि उसके अधीनस्थ उसकी आज्ञानुसार कार्य करते है किन्तु इस प्रकार का नेता सारे अधिकार अपने हाथों में रखता है एवं समस्त शक्ति और निर्णय लेने का अधिकार उसी में केन्द्रित होता है। इस प्रकार का नेता निर्णय प्रक्रिया में अपने अधीनस्थ की भागीदार की अनुमति नहीं देता है। इस बात को भी सहन नहीं करता है कि उसके अनुयायी उसकी आज्ञा से इंकार करें। इस प्रकार के नेतृत्व के अन्तर्गत अनुयायी पूर्णतः अपने नेता पर ही निर्भर करते हैं व लक्ष्यों और अन्तिम उद्देश्य से अनभिज्ञ होते हैं। नेता ही ऐसे निर्णय लेता है जो वह अपने अधीनस्थों के हित में सर्वोत्तम

समझता है। दूसरे शब्दों में, वह अपनी इच्छाओं को निर्णय के रूप में अपने अधीनस्थों पर थोप देता है। ऐसे नेतृत्व से भी अपेक्षित परिणाम तो प्राप्त हो जाते हैं, किन्तु इनमें सबसे बड़ा दोष यह है कि जब तक नेतृत्व अच्छा होगा तब तक तो अनुयायियों के हितों की सुरक्षा होगी और नेता कमजोर और अकुशल होगा, तो उसके अनुयायी भी हीन और अकुशल बन रहेंगे।

(3) **स्वछन्दवादी नेतृत्व** – यह एक ऐसे प्रकार का नेतृत्व है जिसमें नेता अपने अनुयायियों और अधीनस्थों के साथ सम्पर्क नहीं रखना चाहता है और उन्हें अपने स्वयं लक्ष्य निर्धारित करने तथा स्वयं निर्णय लेने के लिए अवसर प्रदान करता है। वास्तव में, अधीनस्थों को पर्याप्त अधिकार सौंप दिये जाते हैं। इस प्रकार वह आज्ञा देने योग्य नहीं होता है। वह सम्पूर्ण प्रयास में शायद ही अपना सहयोग देता है। फलतः सम्पूर्ण संगठन में अव्यवस्था पायी जाती है क्योंकि वह व्यक्तियों की विभिन्न दशाओं में कार्य करने की अनुमति प्रदान करता है। ऐसा नेतृत्व ऐसी स्थिति में सफल हो सकता है जबकि अधीनस्थ पूर्ण रूपेण समझदार व कर्त्तव्य के प्रति निष्ठावान हो। यही कारण है कि इस प्रकार का नेतृत्व कुछ विशेष परिस्थितियों में ही सफल हो सकता है। सामान्य रूप से इस प्रकार के नेतृत्व को अपनाने का सुझाव नहीं दिया जा सकता है।

(4) **लोकतांत्रिक नेतृत्व** – लोकतांत्रिक विचारों वाला नेता ऐसा व्यक्ति होता है जो समूह के साथ विचार विमर्श करके नीतियों का निर्माण करता है। इस प्रकार के नेतृत्व की अवधारणा अधिकार व निर्णय के विक्रेन्द्रीकरण पर आधारित है। एक लोकतांत्रिक नेता अपने अनुयायी को एक सामाजिक इकाई के रूप में कार्य करने के लिए उत्साहित करता है व समूह के सदस्यों की निपुणताओं एवं योग्यताओं का पूरा–पूरा लाभ उठाता है। परन्तु वह एक बाघमण्डल न कि एक व्यक्ति वाले बैण्ड के निदेशक के रूप में काम करता है और वह यह महसूस करता है कि उसका कार्य अपने कर्मचारियों के सहयोगशील कार्य को समन्वित करना है। ऐसा नेता अपने अधीनस्थों की आवश्यकताओं और रूचियों को समझता है और उनके प्रति दया व निष्ठापूर्वक व्यवहार करता है। ऐसे नेता को कर्मचारी केन्द्रित, न कि कार्य केन्द्रित नेता कहा जाता है।

लोकतांत्रिक नेता के प्रमुख लक्षण होते हैं –

1. वह आपसी विचार–विमर्श द्वारा नीतियों का निर्माण करता है।

2. वह समूह के साथ परामर्श करने के बाद ही आदेश देता है।

3. वह अपने अधीनस्थों को अपने कार्य क्षेत्रों में महत्वपूर्ण निर्णय लेने की अनुमति देता है।

4. वह अपने अधीनस्थों को उन निर्णयों को लेने में सहभागी बनाता है जो उन्हें प्रभावित करते हैं।

5. वह अपने अनुयायियों को एक सामाजिक इकाई के रूप में कार्य करने के लिये उत्साहित करता है।

6. वह अपने आदेशों में अर्न्तनिहित कारणों को स्पष्ट करता है तथा आने वाले योजनाओं के समूह को अवगत रखता है।

7. वह कर्मचारी केन्द्रित अधिक होता है और कर्मचारियों को पूर्ण रूपेण स्वतंत्रता प्रदान करता है।

नेतृत्व के कार्य –

नेतृत्व के कार्यों के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। अलग–अलग विद्वानों ने नेतृत्व की कार्य सूची में भिन्न–भिन्न कार्यों को सम्मिलित किया है।

डाल्टन ई0 मैनफारलैण्ड ने नेतृत्व के कार्यों में निम्न बातों को रखा जा सकता है :– 1. समूह लक्ष्यों का निर्धारण करना, 2. योजना का निर्माण करना, 3. नीति तथा क्रियाविधि निर्धारित करना, 4. अधीनस्थों का पथ प्रदर्शन करना, 5. कार्यकुशल कर्मचारियों का समूह तैयार करना तथा उसकी रक्षा करना, 6. अधीनस्थों के व्यवहार व उनकी उपलब्धियों के संदर्भ में मूल्यांकन करना, 7. अनुयायियों के लिये आदर्श प्रदान करना।

नारमैन एफ. वाशवर्न ने एक अच्छे नेता द्वारा किये जाने वाले 8 कार्यों का वर्णन किया है :– (1) क्रियाओं का सूत्रपात करना (2) आदेश देना (3) अपने समूह में स्थापित वाहिकाओं का प्रयोग करना (4) अपने समूह के नियमों व प्रथाओं को जानना और उनका अनुपालन करना (5) अनुशासन बनाये रखना (6) अधीनस्थों को सुनना, (7) अधीनस्थों की आवश्यकता के प्रति जागरूक रहना, (8) अधीनस्थों की सहायता करना।

उक्त आधारों पर कहा जा सकता है कि एक नेता को निम्न प्रकार के कार्य करने पड़ते हैं :–

1. **अधीनस्थों की भावनाओं और समस्याओं को समझना** – सफल नेतृत्व के लिये यह जरूरी है कि नेता को अपने समूह के सदस्यों एवं अपने अधीनस्थों की भावनाओं व समस्याओं को अच्छी प्रकार से समझना चाहिये। लोकतांत्रिक समाज में कर्मचारियों की भावनाओं एवं समस्याओं की आलोचना नहीं की जा सकती।

2. **सहयोग प्राप्त करना** – एक प्रशासनिक संगठन के उद्देश्यों व लक्ष्यों की प्राप्ति समस्त कर्मचारियों के सहयोग से ही सम्भव हो सकती है। अतः आवश्यक है कि एक नेता को सफल होने के लिए अपने समूह कर्मचारियों का सहयोग प्राप्त हो। इसके लिये उसे प्रशासक के रूप में अपने अधीनस्थ का सहयोग प्राप्त करना आवश्यक है। इसके लिये यह आवश्यक है कि वह सहकारिता की भावना को जन्म दे, कर्मचारियों में एक साथ मिलकर कार्य करने की भावना जाग्रत करे और उन्हें यह विश्वास दिलाये कि उपक्रम की सफलता उनके हित में है।

(3) **समन्वय एवं निर्देशन** – एक सफल नेता का तृतीय प्रमुख कार्य अपने अधीनस्थों के कार्यों में आदेश व निर्देशन के माध्यम से समन्वय स्थापित करना है। इसके लिये उसे संप्रेषण–प्रक्रिया को प्रभावी बनाना होगा तथा आदेश व निर्देश की प्रक्रिया में भी मानवीय संबंधों को विशेष रूप से ध्यान में रखना होगा।

(4) **अनुशासन बनाये रखना** – नेता का चौथा कार्य अपने समूह में अनुशासन बनाये रखना भी है चूँकि अनुशासन के माध्यम से ही अपने अधीनस्थों को निर्धारित नियमों का पालन करने के लिये प्रेरित कर सकता है और कार्य के सुचारू

www.ignited.in

रूप से संचालित करने के लिये अनुशासन में निहित शक्ति का प्रयोग कर सकता है।

(5) **आदेश नेता** – नेता स्वयं कार्य न करके अपने अधीनस्थों से कार्य लेता है। अतः उसके द्वारा कार्य को सम्पादित कराने हेतु उसे आदेश देना पड़ता है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि आदेश देना नेता का एक आवश्यक कार्य है।

(6) **प्रभावी संप्रेषण की व्यवस्थ करना** – संगठन की गतिविधियों में सामंजस्य व संतुलन बनाये रखने के लिए और कर्मचारियों में मधुर संबंध व भाईचारे का वातावरण बनाने के लिए प्रबन्धकों अर्थात समूह नायकों को संप्रेषण की उचित व्यवस्था करनी चाहिये। इस दिशा में नेता ही उस प्रकार की संप्रेषण प्रक्रिया की व्यवस्था करता है, जिससे अधीनस्थों व उसके बीच विचारों, आदेशों आदि का आदान–प्रदान लगातार होता रहे।

(7) **संगठन के प्रति निष्ठा बनाये रखना** – एक कुशल नेता का यह भी मुख्य कार्य है कि वह अपने अधीनस्थों में संगठन के प्रति निष्ठा बनाये रखे। यह उसी स्थिति में सम्भव हो सकता है, जबकि वह निर्णयन, विशेषकर कर्मचारियों से सम्बन्धित निर्णय प्रक्रिया में संगठन के उद्देश्यों को निर्धारित करने में कर्मचारियों को भागीदार बनाये तथा कर्मचारियों की आवश्यकताओं व समस्याओं का समाधान करने हेतु लगातार प्रयास करता रहे।

नेतृत्व की तकनीकें –

शोधार्थी ने नेतृत्व की प्रमुख तकनीकों को निम्न प्रकार दर्शाया है।

(1) **सहयोग प्राप्ति** – नेता अपने समूह से सहयोग प्राप्त करता है। सहयोग द्विमार्गीय प्रक्रिया होती है। अधिकारी और समूह दोनों के सहयोग से ही कार्य को सर्वोत्तम ढंग से पूरा करना सम्भव होता है। सहयोग प्राप्ति के लिये नेता अनेक कार्य करता है – 1. वह अपने प्रत्येक अनुयायी को विश्वास दिलाता है कि संगठन का सफल परिचालन एवं सतत जीवन दोनों ही उसके स्वयं के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण है। 2. नेता के लिये एक कुशल मनोवैज्ञानिक होना भी आवश्यक है। उसके लिये अपने समूह के हितों को जानना व समझना आवश्यक है। 3. सहयोग विश्वास पर आधारित होता है। व्यक्ति तभी सहयोग करते है जब उनको अपने नेता में पूर्ण रूपेण विश्वास होता है।

(2) **शक्ति का प्रयोग** – नेतृत्व के साथ शक्ति जुड़ी होती है। इस शक्ति का प्रयोग न्यायिक व सहानुभूतिपूर्वक तीरके से भी किया जा सकता है एवं बल व उत्पीड़न के द्वज्ञरा भी किया जा सकता है। अतः न तो अपनी शक्ति के प्रति निष्ठा व भक्ति सहयोजन द्वारा अर्जित करता है। समझदार नेता बल व उत्पीड़न का प्रयोग नहीं करता। वह अपनी शक्ति का प्रयोग उपक्रम और समूह के हित साधन में करता है।

(3) **समन्वय व आदेश** – वांछित परिणाम को पाने के लिये नेता आदेशों के माध्यम से अपने अधीनस्थों के कार्यों में समन्वय करता है। लिविंग्स्टन के अनुसार नेता द्वारा दिये जाने वाले आदेश सुनिश्चित क्रमबद्व, लोचपूर्ण और स्पष्ट होना चाहिए।

(4) **अनुशासन अनुरक्षण** – अनुशासन एक प्रकार का बल है, जो व्यक्ति को समूह के नियमों, प्रथाओं, आदतों, परम्पराओं आदि के अनुसरण एवं सामूहिक रूप में प्रतिक्रिया को जन्म देता है । कुछ अनुशासन नियमों व कानूनों द्वारा आरोपित एवं कुछ स्वयं द्वारा आरोपित होता है। अनुशासन को बनाये रखने की दृष्टि से नेता द्वारा किये जाने वाले अनुमोदन अच्छे प्रकार के होने चाहिये।

(5) **उच्च समूह मनोबल का विकास** – नेता लगातार अपने समूह के सदस्यों का आत्मविश्वास ऊँचा बनाये रखता है क्योंकि आत्म विश्वास बढ़ने के साथ लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग में किये जाने वाले प्रयासों में मजबूती आती है और मनोबल के गिरने के साथ वह प्रबलता नष्ट हो जाती है।

नेतृत्व की विचारधारायें –

नेतृत्व के विषय में विभिन्न विचारधारायें हैं। इन विचारधाराओं को नेतृत्व अध्ययन के दृष्टिकोण अथवा उपागम भी कहा जाता है। नेतृत्व सम्बन्धी मुख्य विचारधारायें एवं दृष्टिकोण निम्नलिखित हैं।

(1) **महान व्यक्ति दृष्टिकोण** – नेतृत्व के अध्ययन का यह दृष्टिकोण इस मान्यता पर आधारित है कि नेता पैदा होते है, बनाये नहीं जाते। इस दृष्टिकोण के समर्थक 'अधिकारियों के चयन' पर ही सम्पूर्ण बल देते हैं। नेतृत्व की सफलता में मूल्यांकन के लिये वे नेता के व्यवहार एवं उसकी ही कार्यविधियों के अध्ययन व विश्लेषण में कोई रूचि नहीं रखते।

(2) **गुण दृष्टिकोण** – 'गुण', 'विचारधारा', 'महान व्यक्ति दृष्टिकोण' से अलग है। गुण दृष्टिकोण इस मान्यता पर आधारित है कि सफल नेतृत्व नेता की व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताओं पर आधारित होता है और उन विशेषताओं व गुणों का व्यवस्थित रूप से अध्ययन एवं विश्लेषण करना सम्भव होती है। स्पष्टतः 'महान व्यक्ति दृष्टिकोण' जहाँ नेतृत्व की सफलता के आधारों के अध्ययन की आवश्यकता को नकारता है 'गुण दृष्टिकोण' में न केवल नेता के व्यक्तिगत गुणों का विश्लेषण किया जाता है, बल्कि नेतृत्व की सफलता के साथ उन गुणों का सम्बन्ध स्थापित करने का भी प्रयास किया जाता है। चेस्टर आई बनार्ड और ऑरवे टीड इस विचारधारा के प्रणेता है।

जहाँ तक व्यक्तित्व सम्बन्धी गुणों के निर्धारण का प्रशन है, यह अत्यन्त विवादास्पद मामला है। गुण सूची में 6–6 से लोक 20 या इससे भी अधिक गुणों को सम्मिलित किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में कोई सर्वसम्मत गुण सूची उपलब्ध नहीं है। अतः प्रबन्धशास्त्री किसी एक सामान्य गुण सूची के सम्बन्ध में मतैक्य उत्पन्न नहीं कर सके हैं। तथापि तीन वे सभी सामान्य गुण क्षेत्रों के सम्बन्ध में निर्विवाद रूप से एक मत है। 1. बुद्धिमता 2. संचार चातुर्य 3. समूह लक्ष्य की मूल्यांकन योग्यता।

(3) **पारिस्थितिक दृष्टिकोण** – इस दृष्टिकोण का विकास आर.एम. स्टॉगडिल व उसके सहयोगियों द्वारा किया गया है। यह विचारधारा इस तथ्य पर बल देती है कि सफलता के अध्ययन में परिस्थिति विशेष का विश्लेषण महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। एक सफल नेता का व्यवहार सदा एक जैसा नहीं

होता। वह अलग–अलग परिस्थितियों में अलग–अलग प्रकार से व्यवहार करता है।

(4) **व्यवहार दृष्टिकोण** – व्यवहार दृष्टिकोण में नेता के व्यक्तिगत गुणों और उसकी विशेषताओं के स्थान पर उसके व्यवहार के अध्ययन पर अधिक बल दिया जाता है। व्यवहार से अभिप्राय नेता द्वारा किये जाने वाले कार्य और नेतृत्व विश्लेषण के इस दृष्टिकोण में अधिकारियों द्वारा नियोजन, अभिप्रेरणा एवं संचार में लगाया जाने वाला समय और विधि का अध्ययन सम्मिलित है। इस दृष्टिकोण के अनुसार नेतृत्व की सफलता नेतृत्व के व्यवहार पर निर्भर करती है अर्थात् किसी नेता की सफलता का मूल्यांकन उनके व्यवहार का विश्लेषण करके ही किया जा सकता है।

(5) **सहयोगात्मक दृष्टिकोण** – इसका विकास एफ0ई0 फीडलर और उनमें सहयोगियों द्वारा किया गया है। यह विचारधारा कुछ अंशों में 'गुण दृष्टिकोण' और पारिस्थितिक दृष्टिकोण' का मिश्रण है। फीडलर की यह मान्यता है कि कोई भी व्यक्ति केवल अपने व्यक्तित्व सम्बन्धी गुणों के आधार पर ही नेता बनने में सफल नहीं होता, वरन् विभिन्न परिस्थिति संबंधी घटकों और नेता एवं परिस्थिति के मध्य होने वाली अन्तक्रिया की उल्लेखनीय भूमिका भी होती है।

(6) **जीवनचक्र दृष्टिकोण** – ए0के0 फारेमैन इस दृष्टिकोण के विकास के प्रणेता है। यह दृष्टिकोण 'ओहियो स्टटे यूनिवर्सिटी के अध्ययनों का परिणाम है। जीवन चक्र दृष्टिकोण में नेता की विशेषताओं तथा परिस्थिति के स्थान पर अनुयायियों की महत्ता पर बल दिया गया है। इसकी मान्यता के अनुसार नेतृत्व का सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटक 'अनुयायी' होते हैं क्योंकि हर स्थिति में व्यक्तिगत रूप से वे ही किसी नेता को स्वीकार अथवा अस्वीकार करते हैं और सामूहिक रूप से वही वस्तुतः नेता की व्यक्तिगत शान्ति का निर्धारण स्रोते होते हैं।

जीवन चक्र विचारधारा की यह मान्यता है कि किसी नेता के अनुयायियों में परिपक्वता के स्तर में वृद्धि के साथ नेता को अपने व्यवहार में उसी के अनुसार परिवर्तन करना आवश्यक होता है।

(7) **अन्त क्रियात्मक दृष्टिकोण** – यह दृष्टिकोण इस मान्यता पर आधारित है नेतृत्व समूह के सदस्यों के बीच की अन्तक्रियाओं पर निर्भर करता है। ये अर्न्तक्रिया उत्पादकता, मनोबल आदि में वृद्धि को प्रभावित करती है। नेतृत्व इन अन्तक्रियाओं को ध्यान में रखकर निर्धारित होता है।

(8) **अनुयायी दृष्टिकोण** – जीवन चक्र दृष्टिकोण की तरह है। यह दृष्टिकोण भी अनुयायियों के अध्ययन पर बल देता है। उस विचारधारा का प्रतिपादन एफ0एच0 सेन्सफोर्ड द्वारा किया गया है। इस दृष्टिकोण की मान्यता है कि अनुयायियों को कुछ प्राथमिक आवश्यकतायें होती हैं और जो व्यक्ति इन आवश्यकताओं की पूर्ति कराने में सर्वाधिक रूचि लेकर अनुयायियों की सहायता का कार्य करता है, उसी को अनुयायी अपना नेता मान लेते हैं। किसी नेता की क्षमता के मूल्यांकन का आधार उसके अनुयायियों के आचरण का अध्ययन व विश्लेषण होना चाहिए।

नेतृत्व सम्बन्धी गुण –

किसी भी उपक्रम की सफलता उस उपक्रम के प्रबन्धकों के नेतृत्व सम्बन्धी गुणों पर निर्भर करती है। यदि उपक्रम में सफल नेतृत्व होता है और उसमें अपेक्षित गुण पाये जाते हैं तो उपक्रम मन चाहे लक्ष्य को पाने के लिये किया जा सकता है।

केयोल के नेतृत्व के विभिन्न गुणों का वर्णन किया है। 1. स्वास्थ्य व शारीरिक स्वस्थता (क्षमता), 2. समझदारी व मानसिक शक्ति 3. नेतृत्व गुण 4. समानता 5. प्रबन्धकीय योग्यता

उर्विक के अनुसार नेतृत्व में निम्नलिखित गुण होने चाहिये – 1. साहस (ब्वनतंहम), 2. इच्छा शक्ति (ॅपसस च्वूमत), 3. लोचशीलता (थ्समगइपसपजल), ज्ञान (ज्ञदवूसमकहम), 5. ईमानदारी (भ्वदमेजल)

प्रो0 केट्स के एक नेता में तीन गुणों के होने पर मुख्यतः बल दिया है – 1. तकनीकी गुण, 2. मानवीय गुण, 3. सैद्धान्तिक गुण। तकनीकी गुणों से आशय उसकी उस योग्यता से है जिसके माध्यम से वह अपने ज्ञान विधियों व तकनीकों का समुचित रूप से अपने कार्य निष्पादन में प्रयोग करने में समर्थ हो पाता है। यह योग्यता उसके अनुभव शिक्षा और प्रशिक्षण से प्राप्त होती है। मानवीय गुण के अन्तर्गत उसकी उस योग्यता व निर्णयन की क्षमता को शामिल किया है जिसकी सहायता से वह अन्य लोगों के साथ कार्य करने में अभिप्रेरणा प्रक्रिया को समझने में तथा प्रभावी नेतृत्व का उपयोग करने में समर्थ हो पाता है। सैद्धान्तिक गुण से आशय उस योग्यता से है जो उसे समस्त संगठन के समझाने एवं यह जानने के लिये उसका उसमें क्या स्थान है, समर्थ बनाती है।

विस्तृत रूप से यह अपेक्षा की जाती है कि नेतृत्व में निम्नलिखित गुण होने चाहिए।

(1) **आत्मविश्वास** – एक अच्छे नेता में आत्मज्ञान पर आधारित आत्म विश्वास होना चाहिए। इस गुण के कारण ही अन्य लोगों के विश्वास को प्राप्त करने में समर्थ हो सकेगा।

(2) **स्फूर्ति व सहिष्णुता** – बर्नाडे ने स्फूर्ति को शक्ति, चेतना और सजगता का मिश्रण अथवा सहिष्णुता बतलाया है। एक अच्छे नेता में यह गुण होना जरूरी है चूँकि इसके माध्यम से ही अधीवरथ एवं अनुयायियों के सम्बन्ध में विचार करने के लिये सक्षम हो पाता है। यह गुण केवल उसके अनुभव व ज्ञान में वृद्धि करता है तथा उसके व्यक्तिगत प्रभाव को भी बढ़ाता है।

(3) **संप्रेषण की याग्यता** – एक अच्छे नेता में निर्देशों व विचारों को तथा आदेशों को अन्य व्यक्तियों को संप्रेष्ति करने की योग्यता होनी चाहिए। साथ ही संप्रेषण के परिणाम स्परूप उसमें अनेकों व्यक्तियों की प्रतिक्रिया जानने की क्षमता होनी चाहिए।

(4) **सत्यनिष्ठा** – नेतृत्व सर्वोत्तम ढंग से उसी समय कार्य करता है जबकि वह सद्भावना निष्कपटता व सत्यनिष्ठा, नैतिक सुदृढ़ता व सच्चाई पर आधारित होता है।

(5) **निर्णायकता** – यह गुण नेता में निर्णय लेने से सम्बन्धित होता है। प्रत्येक नेता में किसी भी परिस्थिति में निर्णय लेने की क्षमता अवश्य होनी चाहिए, क्योंकि प्रभावशाली निर्णयकर्त्ता पर ही संगठन की पर्याप्त योग्यता होनी चाहिए।

(6) उत्साहित करने की योग्यता – एक नेता में अपने अनुयायियों को प्रभावित करने की सफलता पर निर्भर होना चाहिए।

(7) साहस – एक नेता में उन कार्यों को करने, जिन्हें वह उचित समझता है, का नैतिक साहस होना चाहिए। उसे निर्णय लेने और निर्णय के अनुसार ही कार्य करने में अडिग बने रहने के लिये निर्भीक, निडर होना चाहिए। फील्ड मार्शल स्लिम के अनुसार, "बिना साहस के कोई भी सद्गुण प्रभावी नहीं होते, क्योंकि विश्वास, आशा व दया इत्यादि सभी सद्गुण नहीं रह पाते जब तक कि उनका प्रयोग करने के लिये साहस का आश्रय नहीं लिया जाता है।"

(8) विचारों में विवेकशीलता – तीव्र गति से परिवर्तनशील सामाजिक–आर्थिक वातावरण में एक नेता में लोचशीलता का होना अत्यन्त आवश्यक है। परिस्थितियों के परिवर्तित होने पर उसमें अपने विचारों में परिवर्तन करने की क्षमता होनी चाहिए।

(9) उत्तरदायित्व – एक अच्छे नेता में उत्तरदायित्व निभाने की क्षमता होनी चाहिए। अपने उत्तरदायित्व को निभाने के लिये वह अपने नैतिक कर्त्तव्यों को पूरा कर सकता है।

(10) अनुभूति – एक नेता में दूसरे लोगों की भावनाओं, जिज्ञासाओं, हितों तथा परिस्थितियों को समझने व अनुभव करने की क्षमता होनी चाहिए। एक अच्छा नेता वही माना जाता है जो अपने अधीनस्थों की भावनाओं के अनुसार कार्य करे। लोग ऐसे नेता के आदेशों का पालन करते हैं और उसके निर्देशानुसार अपना कार्य अपनी इच्छा से करने के लिये तत्पर रहते हैं।

(11) समझदारी – एक नेता में अपने अनुयायियों से अधिक समझदारी होनी चाहिए, जिससे कि वह अपने सही मार्गदर्शन दे सके और उससे अपेक्षित लक्ष्यों की पूर्ति करा सके।

(12) अच्छा निर्णय – एक अच्छे नेता में भविष्य के विषय में सोचने व समझाने की क्षमता होनी चाहिए, जिससे कि भविष्य में किये जाने वाले कार्यों तथा समस्याओं के समाधान के लिये अच्छे निर्णय ले सके।

राजनीतिक नेतृत्व के उभरते प्रतिमान –

भारत में आजादी के बाद राजनीतिक नेतृत्व के परम्परागत स्वरूप में काफी महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। आजादी के पश्चात एक धर्मनिरपेक्ष, समतावादी और लोकतांत्रिक समाज की स्थापना के लिये राजनीति विकास को सर्वप्रमुख आवश्यकता के रूप में स्वीकार किया गया। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये दलों में नवीन योजनायें, बनायी गयीं बल्कि सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक जीवन में राजनीति की सहभागिता को भी आवश्यक समझा जाने लगा। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया के प्रभाव से राजनीतिक नेतृत्व के अन्तर्गत अनेक ऐसे प्रतिमान विकसित होने आरम्भ हो गये जिनका परम्परागत राजनीतिक नेतृत्व में पूर्ण अभाव था। नेतृत्व के बाद नवोदित प्रतिमानों को समझ लेने के बाद ही राजनीति शक्ति संरचना से सम्बद्ध इस महत्वपूर्ण पक्ष की प्रकृति को अधिक अच्छी प्रकार से समझा जा सकता है।

(1) लोकतान्त्रिक नेतृत्व का प्रादुर्भाव – आज लोकतांत्रिक नेतृत्व का विकास हुआ है जिसमें व्यक्ति की आनुवंशिक स्थिति भू–स्वामित्व व जातिगत सदस्यता का महत्व नहीं है। राजनीतिक नेतृत्व अब उन व्यक्तियों में केन्द्रित है जो सामान्य ग्रामीणों के द्वारा निर्वाचित होते है तथा जिन्हें बहुमत का समर्थन प्राप्त होता है। एक विशेष तथ्य यह है कि इस प्रजातांत्रिक नेतृत्व में व उसके अनुयायियों की शक्ति व प्रतिष्ठा में कोई स्पष्ट भेद नहीं होता। इसका मतलब है कि राजनीतिक नेता अन्य व्यक्तियों को अपने व्यवहारों से प्रभावित करने के साथ ही स्वयं राजनीतियों की आकांक्षाओं को अपने व्यवहारों से प्रभावित करने के साथ ही स्वयं राजनीतिज्ञों की आकांक्षाओं से भी प्रभावित होता है। नेतृत्व का स्वरूप अब और अधिक लौकिक और धर्मनिरपेक्ष हो गया है। यह राजनीतिक नेतृत्व में उत्पन्न एक ऐसा बदलाव है जिसने सम्पूर्ण राजनीतिक शक्ति संरचना के स्वरूप को परिवर्तित कर दिया है।

(2) शैक्षिक महत्व – कुछ समय पहले तक राजनीतिक क्षेत्रों में व्यापक निरक्षरता होने के कारण नेतृत्व में भी शिक्षा का कोई महत्व नहीं था। वर्तमान समय में नेतृत्व के लिये शिक्षा को आवश्यक समझा जाने लगा है। नये नियमों के अन्तर्गत अब राज्य की ओर से भी ऐसे निर्देश दिये जाने लगे है कि राजनीति में कोई पढ़ा लिखा व्यक्ति ही आसीन हो सकता है। प्रो0 योगेन्द्र सिंह का विचार है कि राजनीतिक नेतृत्व में युवा एवं शिक्षित व्यक्तियों द्वारा भाग लेने के कारण भी शिक्षा को नेतृत्व का आवश्यक आधार समझा जाने लगा।

हिचकॉक ने यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि गाँव में शिक्षित नेता की उपयोगिता पहले की तुलना में अधिक बढ़ गई है। प्रो0 सिंह एवं पारिख ने यह ज्ञात किया आज राजनीति में केवल वही व्यक्ति यंत्रणा नेता बन पाता है जो कुछ सीमा तक शिक्षित होता है। इन सभी अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि शिक्षित नेताओं को ही आज राजनीति का विश्वास प्राप्त है एवं उन्हीं को राजनीतिक जीवन के लिये अधिक उपयोगी समझा जाता है।

(3) नेतृत्व में विशेषीकरण – राजनीतिक नेतृत्व में उत्पन्न बदलाव में से एक यह है कि आज नेता में ही राजनीति की सम्पूर्ण शक्ति केन्द्रित नहीं होती बल्कि जीवन के प्रत्येक विशिष्ट पक्ष तथा विशिष्ट कार्यों से सम्बद्ध पृथक–पृथक व्यक्तियों को नेता के रूप में मान्यता दी जाने लगी है। वास्तव में राजनीतिक जीवन भी अब इतना विविधतापूर्ण हो गया है कि विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये विभिन्न प्रकार के नेताओं की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिये ग्रामसभा का प्रधान, न्याय पंचायत के पंच, सहकारी समिति के अध्यक्ष, स्कूल का शिक्षक, युवक मण्डल का अध्यक्ष तथा कल्याण समितियों के पदाधिकारी आदि ऐसे नेता है जिनमें सम्पूर्ण राजनीतिक नेतृत्व विभाजित रूप में देखने को मिलता है। डॉ0 बैजनाथ सिंह ने यह स्पष्ट किया है कि राजनीतिक नेतृत्व की विविधता मूल रूप से सामुदायिक विकास योजनाओं के क्रियान्वयन का सुपरिणाम है।

(4) युवकों का बढ़ता हुआ प्रतिनिधित्व – राजनीतिक नेतृत्व में एक बदलाव यह हुआ है कि अब किसी व्यक्ति को नेता बनने के लिये अधिक आयु का होना आवश्यक नहीं है। कुछ समय पहले तक राजनीतियों का यह विश्वास था कि केवल वृद्ध और अनुभवी व्यक्ति ही नेता बन सकता है, लेकिन

अब राजनीतिक क्षेत्रों में नेतृत्व धीरे–धीरे युवा वर्ग के हाथों में आता जा रह है। इसका मुख्य कारण यह है कि कृषि से सम्बन्धित वर्तमान नवाचारों का प्रशिक्षण तथा ज्ञान प्राप्त करके जब युवा वर्ग राजनीति में आता है तो वह सरलता से राजनीति का सलाहकार बन जाता है और शनै–शनै उसका नेतृत्व ग्रहण कर लेता है। सरकार द्वारा चलाये जा रहे राजनीतिक विकास कार्यक्रमों में भी युवा वर्ग की सहभागिता ही सबसे ज्यादा है। पंजाब में इन्द्र सिंह द्वारा किये गये अध्ययन व उत्तर प्रदेश में रंगनाथ द्वारा किये गये अध्ययन से भी इसी प्रकार के परिणाम प्राप्त हुये हैं। इन दोनों ने यह विचार व्यक्त किया है कि भारत के राजनीतिक नेतृत्व में आयु का महत्व तेजी से घट रह है। युवा वर्ग सदैव ही अधिक क्रियाशील, विचारों में उदार, व्यवहार में परिवर्तनशील एवं जीवन के प्रति तर्कपूर्ण मनोवृत्ति रखने वाला लोता है। ये विशेषता में एक परिवर्तनशील समुदाय में नेतृत्व के लिये अधिक उपयोगी समझी जाती है।

(5) मध्यम वर्ग की प्रधानता – भारतीय राजनीतिक नेतृत्व का परम्परागत स्वरूप मुख्य रूप से उस वर्ग से सम्बद्ध था जो या तो बड़ी–बड़ी भूमियों का स्वामी था अथवा जिसके पास धन की अतुल शक्ति थी। लोकतांत्रिक व्यवस्था के पश्चात आज राजनीति में एक ऐसे नेतृत्व का प्रादुर्भाव हुआ है जो मुख्य रूप से साधारण किसानों, पशु पालकों व कारीगरों से सम्बद्ध है। मध्यम वर्ग के व्यक्तियों से सामान्य राजनीतिज्ञ जल्दी ही अपनी अनुरूपता स्थापित कर लेता है। जिसके फलस्वरूप उन्हें नेतृत्व ग्रहण करने तथा किसी विशेष कार्य को करने का निर्देश देने के अधिक अवसर प्राप्त हो जाते है।

(6) नेतृत्व में परिवर्तनशीलता – परम्परागत नेतृत्व की अपेक्षा वर्तमान राजनीतिक नेतृत्व परिवर्तन की विशेषता से मुक्त है। आनुवंशिकता का सिद्धान्त समाप्त हो जाने के कारण उन राजनीतिज्ञों की आकांक्षाओं के अनुरूप राजनीतिक नेतृत्व में निरन्तर परिवर्तन हो हुआ है। एक समय जो व्यक्ति नेता होता है कुछ समय बाद वही व्यक्ति आम नागरिकों के आक्रोश का शिकार भी बन सकता है। इस प्रवृत्ति के फलस्वरूप अब केवल अधिकार सम्पन्न व्यक्ति ही नहीं होता बल्कि उसे अधिकारों की अपेक्षा प्रजातन्त्र के प्रति जागरूक भी रहना पड़ता है।

(7) सामूहिक नेतृत्व का विकास – राजनीति में नेतृत्व आज एक सीमित स्तर से हटकर सामूहिक स्वरूप ग्रहण कर रहा है। परम्परागत रूप से जहाँ प्रत्येक परिवार, जाति समूह के नेता पृथक–पृथक होते थे और उनकी स्थिति आनुवंशिक रूप से निर्धारित होती थी वहीं आज एक ऐसे नेतृत्व का प्रादुर्भाव हुआ है जिसमें सभी जातियाँ तथा परिवार मिलकर एक सामूहिक नेतृत्व से सम्बद्ध हो गये है। यह सच है कि सामूहिक नेतृत्व भी बहुधा उच्च जातियों में विभाजित है लेकिन ऐसे विभाजन की दृढ़ता अब काफी सीमा तक दुर्बल पड़ती जा रही है।

(8) नेतृत्व राजनीति से सम्बद्ध – राजनीति शक्ति संरचना में विभिन्न राजनीतिक दलों के प्रवेश के कारण अब नेतृत्व का सामाजिक सुधार से उतना सम्बन्ध नहीं रहा है जितना कि विभिन्न राजनीतिक गतिविधियों से। वर्तमान स्थिति में अधिकांश गाँव अब भिन्न–भिन्न राजनीतिक दलों के केन्द्र बन गये हैं। परम्परागत रूप से राजनीतिक नेतृत्व का किसी राजनीतिक विचारधारा से कोई सम्बद्ध नहीं था। राजनीति के प्रभावशाली व्यक्ति जिस दल के पक्ष में होते है उसी को सम्पूर्ण दल का समर्थन प्राप्त हो जाता था।

इसके विपरीत आज प्रत्येक राजनीतिक दल राजनीतिक संरचना को ध्यान में रखते हुये अपनी गतिविधियों का संचालन करता है जिसके लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के संदर्भ में मेहता कमेटी की रिपोर्ट में यह सुझाव था कि गाँव से लेकर जनपद स्तर तक के सभी चुनावों में राजनीतिक दलों को सक्रिय सहभाग लेना चाहिए। इस सुझाव का स्पष्ट रूप से अब राजनीतिक जीवन में परिवर्तन हो रहा है।

(9) परम्परागत भू–स्वामित्व, परिवार तथ जाति प्रभाव में ह्रास – परम्परागत रूप से राजनीतिक नेतृत्व केवल उन्हीं व्यक्तियों में केन्द्रित था जो बड़ी भूमि के स्वामी थे, प्रतिष्ठित परिवारों से सम्बद्ध थे अथवा उच्च जाति के सदस्य थे। वर्तमान युग में राजनीतिक नेतृत्व का ऐसा प्रतिमान विकसित हुआ है जिसमें इन आधारों का कोई महत्व कम हो गया है। जनतांत्रिक चुनाव पद्धति में नेतृत्व का निर्धारण अब किसी समूह की संख्या शक्ति के आधार पर होने लगा है। इसी का परिणाम यह है कि आज राजनीतिक नेतृत्व में पिछड़ी और अनुसूचित जातियों का प्रतिनिधित्व निरन्तर बढ़ता जा रही है। पंचायत राज व्यवस्था के प्रत्येक स्तर पर अनुसूचित जातियों, जनजातियों तथा पिछड़े वर्गों के लिये स्थान सुरक्षित हो जाने के कारण भी राजनीतिक नेतृत्व में इन जातियों की सहभागिता में पर्याप्त वृद्धि हुई है।

(10) नवीन रूप में परिवारवादी तथा जातिवादी नेतृत्व – आज परिवारवादी राजनीति के परम्परागत रूप का भले ही क्षरण हो गया है लेकिन उसकी जगह राजनीति में नवीन ढंग से परिवार वादी उपजा है। आज मध्यम वर्ग तथा निम्न वर्ग से निकले लोग जब क्षेत्र विशेष में अपनी राजनीतिक पकड़ बना लेते हैं तो वे अपने परिवार के अन्य सदस्यों को राजनीति में उतारकर इस नये परिवारवाद को स्थापित करने की चेष्टा करते हैं। जैसे उ0प्र0 में समाजवादी नेता श्री मुलायम सिंह यादव का परिवारवाद स्पष्ट है। नेहरू – इंदिरा गाँधी के परिवारवाद को राहुल तथा प्रियंका गाँधी के रूप में देखा जा सकता है। इनके चुने जाने का आधार यह है कि वे एक परिवार विशेष है। बड़ी विडम्बना है कि उन दलों के वरिष्ठ नेता अपने निहित स्वार्थों के चलते उनके सामने दण्डवत होते हैं।

इसी प्रकार भाजपा तथा अन्य दलों के नेताओं ने परिवारवाद को शुरू करने की कोशिश की लेकिन शुरूआत में ही जनता की स्वीकृत न मिलने के कारण वे अभी रूक गये है। लेकिन अनुकूल मौके की तलाश में बैठे हैं। जैसे राजनाथ सिंह (भाजपा) के पुत्र का राजनीति में आना।

आज जातिवाद भी नवीन ढंग से नेतृत्व का एक प्रमुख आधार बनकर दिखाई देता है। आज पिछड़े तथा दलित नेतृत्व का आधार इसी जातिवादी राजनीति का प्रतिफल है।

(11) अधिशासी नेतृत्व पर बल – राजनीति में नवीन विकास योजनाओं के क्रियान्वयन के कारण एक ऐसे नेतृत्व का प्रादुर्भाव हुआ है जिसे अपनी प्रकृति से नौकरशाही अथवा अधिशासी कहा जा सकता है। उदाहरणार्थ सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के फलस्वरूप राजनीति में राजनीतिज्ञों की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गई है।

इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि राजनीतिक जीवन में नेतृत्व केवल प्रतिमान ही विकसित नहीं हुये है बल्कि उन परिस्थितियों में भी परिवर्तन हुआ है जो नेतृत्व के एक विशेष स्वरूप का निर्धारण करते हैं। उदाहरण के लिये संयुक्त

www.ignited.in

परिवारों की संख्या बढने के कारण नेतृत्व के निर्धारण में परिवार का महत्व कम हुआ है। भू–स्वामित्व के नवीन कानूनों के कारण परम्परागत जमीदारों तथा भू–स्वामियों की स्थिति में ह्रास हुआ है। समाजवादी मूल्यों का प्रसार होने से राजनीति के छोटे और सीमान्त राजनीतिज्ञों ने उन अधिकारों की माँग करना आरम्भ कर दिया है जिनकी कुछ समय पहले तक सम्भावना भी नहीं की जा सकती थी। नगरों में शिक्षा प्राप्त करके राजनीति में आने वाले नवयुवक ऐसे विचारों का प्रसार कर रहे है जिनके अन्तर्गत परम्परागत स्वरूप स्थित नहीं रह सकता।

यह सच है कि परम्परागत राजनीतिक नेतृत्व से सम्बद्ध अधिकारों का उपयोग कर लेने के पश्चात राजनीति के परम्परागत दल आज भी बदली हुई परिस्थितियों में अपने प्रभाव को बनाये रखने का प्रयत्न कर रहे हैं, किन्तु इन परिवर्तित दशाओं के अन्तर्गत उन्हें अधिक सफलता प्राप्त नहीं हो सकी है।

पम्परागत एवं वर्तमान नेतृत्व – एक तुलना –

भारत में राजनीतिक नेतृत्व के नवीन प्रतिमानों को देखते हुये अनेक विद्वानों का विचार है कि भारत में नवीन राजनीतिक नेतृत्व पुर्ननिर्माण के क्षेत्र में परम्परागत नेतृत्व से अधिक अच्छा सिद्ध नहीं हुआ है। राजनीतिक भारत का उदीयमान नेतृत्व आज उतना ही स्वार्थपरक है। इसका तात्पर्य है कि नेतृत्व के वर्तमान स्वरूप में ग्रामीण क्षेत्रों में अनेक उपयोगी कार्य अवश्य किये हैं, लेकिन यह नेतृत्व स्वयं में इतना दोषपूर्ण है कि परम्परागत नेतृत्व से प्राप्त होने वाले लाभों की तुलना में इसे अधिक उपयोगी एवं सार्थक नहीं कहा जा सकता। इस दृष्टिकोण से यह आवश्यक है कि हम वर्तमान राजनीतिक नेतृत्व की भूमिका के संदर्भ में इसकी परम्परागत नेतृत्व से तुलना करें।

(1) **भू–स्वामित्व तथा सम्पत्ति की दृष्टि से** – परम्परागत रूप से राजनीतिक नेतृत्व के निर्धारण में भू–स्वामित्व तथा सम्पत्ति महत्वपूर्ण आधार थे। नेतृत्व साधारणतया उन्हीं व्यक्तियों के द्वारा किया जाता था जो दल के प्रतिष्ठित व्यक्ति होते थे तथा जिनके निर्देशों का पालन करना राजनीतिज्ञ अपना नैतिक दायित्व समझते थे तथा वर्तमान समय में सैद्धान्तिक रूप से भले ही भू–स्वामित्व, सम्पत्ति एवं परिवार की प्रतिष्ठा को एक निर्बल कारक कह दिया जाये, लेकिन व्यवहारिक रूप से इन आधारों पर प्रभाव आज भी बना हुआ है। डॉ0 योगेन्द्र सिंह ने यह स्पष्ट किया है कि राजनीतिक नेतृत्व में आज भी बड़े भू–स्वामियों का स्पष्ट प्रभाव है। जो व्यक्ति बड़ी भूमि के स्वामी है वही धनवान और शिक्षित भी है। किसी कारण यदि ऐसे व्यक्तियों को नेतृत्व प्राप्त नहीं हो पाता तो स्थानीय अधिकारों तथा कानूनी ज्ञान के कारण ये व्यकित किसी भी प्रकार की बाधा उत्पन्न करके अपने प्रभाव को बनाये रखने का प्रयत्न करते है। नेतृत्व के इस स्वरूप ने आज एक ऐसे संघर्षपूर्ण वातावरण का निर्माण किया है जिससे राजनीतिक समस्याओं में वृद्धि हुई है। इस दृष्टिकोण से वर्तमान परम्परागत नेतृत्व की तुलना में दोषपूर्ण प्रतीत होता है।

(2) **सुधार कार्यों की दृष्टि से** – भारतीय राजनीति का परम्परागत राजनीतिक नेतृत्व केवल राजनीति से सम्बद्ध न होने के कारण रचनात्मक कार्यों, विवादों के निपटारे तथा चरित्र–निर्माण को अधिक महत्व देता था। दैनिक जीवन में नेतृत्व का यह स्वरूप व्यावहारिक था, जिससे इस सम्पूर्ण समूह की निष्ठा प्राप्त हो जाती थी। दूसरे शब्दों में, परम्परागत नेता सम्पूर्ण राजनीति का संरक्षक होता था। इसके विपरीत वर्तमान युग में लोकप्रिय नेता कहीं अधिक व्यक्तिवादी और स्वार्थपरक है। आज का राजनीतिक नेता अपने अनुयायियों की संख्या के आधार पर अपनी राजनीतिक शक्ति बढ़ाने तथा विभिन्न प्रकार के आर्थिक लाभ प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। इस दशा में उसके द्वारा किये जाने वाले राजनीतिक कार्य भी एक प्रदर्शन मात्र होते हैं। जिसमें किसी प्रकार की आन्तरिक्ता नहीं होती।

(3) **औपचारिकता और अनौपचारिकता की दृष्टि से** – राजनीतिक नेतृत्व का परम्परागत स्वरूप अनौपचारिक था, जिसमें राजनीतिक जीवन को नियन्त्रित करने की एक प्रबल शक्ति निहित थी। इस नेतृत्व में प्रभुत्व का तत्व उतना महत्वपूर्ण नहीं था जितना की समर्पण और त्याग का। वर्तमान राजनीतिक नेतृत्व एक औपचारिक नेतृत्व है, जिसे शक्ति के द्वारा प्रभावपूर्ण बनाये रखने का प्रयत्न किया जाता है। राजनीतिक नेता आज न केवल चुनाव के समय शक्ति प्रयोग करता है बल्कि निर्वाचित होने के बाद अपनी सत्ता शक्ति के द्वारा विरोधी समूहों का हानि पहुँचाने तथा अपने समर्थकों को अवैधानिक रूप से लाभ पहुँचाने का कार्य भी करता है। इसके फलस्वरूप वर्तमान नेतृत्व सम्पूर्ण दलों व राजनीतिक क्षेत्रों का वास्तविक प्रतिनिधि नहीं होता और न ही उसके प्रति ग्रामीणों की अधिक निष्ठा होती है।

(4) **स्थान और क्षेत्र की दृष्टि से** – परम्परागत राजनीतिक नेतृत्व मौलिक रूप से स्थानीय होने के कारण नेता अपने समूह की समस्याओं को समझाने व उनका समाधान करने में अधिक सक्षम होता था। लेकिन राजनीतिक नेतृत्व का वर्तमान स्वरूप अधिक व्यापक है जिसका रूप गाँव पंचायत से लेकर न्याय पंचायत, विधान सभा तथा लोकसभा तक के चुनावों में देखने को मिलता है। एक बड़े राजनीतिक समस्याओं के समाधान में आज अधिक सहायक सिद्ध नहीं हुआ है। वास्तविकता तो यह है कि एक ऐसे नेतृत्व के अन्तर्गत संघर्षों तथा गुटवाद की प्रक्रिया को ही अधिक प्रोत्साहन मिलता है।

(5) **उच्च और निम्न जातियों की दृष्टि से** – वर्तमान नेतृत्व में अनुसूचित व पिछड़ी जातियों का प्रतिनिधित्व निरन्तर बढ़ता जा रहा है। समतावादी मूल्यों तथा प्रजातांत्रिक व्यवस्था के दृष्टिकोण से इस परिवर्तन को प्रगति के रूप में देखा जा सकता है, किन्तु यह भी सच है कि इसके फलस्वरूप राजनीतिक जीवन में अनेक नई समस्याओं का प्रादुर्भाव हुआ है। जिन दलों में नेतृत्व अनुसूचित जाति के व्यक्तियों को प्राप्त है, वहाँ उच्च और निम्न जातियों के बीच संघर्ष भी अधिक होते देखे गये हैं। ऐसे नेतृत्व को सामान्य राजनीतिज्ञों की मान्यता न मिलने के कारण यह अक्सर अप्रभावी होता जाता है। इस प्रकार राजनीतिज्ञों को विकास योजनाओं का अधिक लाभ नहीं मिल पाता। यह दोष अस्थायी हो सकता है, लेकिन उससे उत्पन्न समस्याओं का निवारण करने के लिये अब एक स्वस्थ नवीन दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

(6) **सामाजिकता और संस्कृति की दृष्टि से** – राजनीतिक जीवन में परम्परागत नेतृत्व मुख्यतः सामाजिक होने के कारण राजनीतिक मूल्यों तथा मनोवृत्तियों के अधिक अनुकूल था। वर्तमान जीवन में एक नवीन संस्थापक नेतृत्व विकसित हुआ है जो राजनीतिक जीवन के लिये अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं हो सका है। यह संस्थापक नेतृत्व आज पंचायत, सहकारिता व सामुदायिक विकास से सम्बद्ध अधिकारियों के रूप

में है जो आर्थिक पक्ष को सामाजिक और सांस्कृतिक पक्षों की तुलना में अधिक आवश्यक मानता है। स्वाभाविक है कि इसके फलस्वरूप दलों में आज सामाजिक और सांस्कृतिक विघटन की समस्यायें प्रबलता से उत्पन्न हुई है।

वर्तमान राजनीतिक नेतृत्व ने जिन समस्याओं को जन्म दिया है उनकी तुलना में परम्परागत नेतृत्व ही अधिक संगत प्रतीत होता है। वास्तविकता यह है कि हम परम्परागत व नवीन राजनीतिक नेतृत्व के लाभ और दोषों के बाद भी उन्हें एक दूसरे से अलग नहीं कर सकते। रंगनाथ ने भी अपने अध्ययन के आधार पर यही निष्कर्ष दिया है कि राजनीतिक नेतृत्व में आज परम्परा और आधुनिकता के तत्वों का एक मिश्रण विद्यमान है। नेतृत्व के क्षेत्र में आज प्रायः परम्परागत एवं नवीन संघर्ष की स्थिति देखने को मिलती है, किन्तु सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में जिस तेजी से बदलाव की विभिन्न प्रक्रिया क्रियाशील है उनको देखते हुये यह सरलतापूर्वक निष्कर्ष दिया जा सकता है कि राजनीतिक जीवन में अब परम्परागत राजनीतिक नेतृत्व को पुनर्स्थापित करने की सम्भावना तलाश पाना अत्यधिक कठिन है।

(7) ऊपर से थोपा गया नेतृत्व – राजनीति में स्थापित कुछ पुराने परिवार आज खत्म हो रहे हैं। वही कुछ परिवार अभी भी स्थापित है जैसे – नेहरू–इंदिरा परिवार। इसके साथ ही कुछ नये परिवार भी स्थापित हुए हैं जैसे उ0प्र0 में मुलायम सिंह यादव का परिवार, कुछ अन्य दलों के लोगों ने भी अपने परिवार को स्थापित करने की चेष्टा की है, लेकिन जनता के तुरन्त विरोध या पार्टी में उनकी कमजोर स्थिति के कारण वे ऐसा करने में असफल हुए, लेकिन हारे नहीं है। उन्हें यदि भविष्य में अनुकूल परिस्थितियों के रूप में मौका मिलता है तो पुनः एक बार स्थापित परिवारों का अनुसरण कर राजनीतिक नेतृत्व को प्राप्त करने की कोशिश करेंगे। जैसे राक्रांपा के नेता श्री कल्याण सिंह का पुत्र मोह (श्री राजवीर सिंह) भाजपा के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री राजनाथ सिंह का अपने पुत्र को सक्रिय राजनीति में उतारना तथा उसे समर्थन करना। ऐसे अनेक नेता हैं जिन्होंने परिवार को आगे बढ़ाने के लिये अपनी राजनीति को भी नुकसान पहुँचाने का कार्य किया और अंततः लाभ होने न देख पार्टी को भी अलविदा कह दिया। ऐसे राजनीतिक परिवारों से आये हुए नवीन पीढ़ी के लोग सिर्फ इस आधार पर नेता बनने की कोशिश करते हैं कि चूँकि उनके दादा–दारी, पिता या चाचा या मामा वर्षों से अमुक क्षेत्र में नेतृत्व कर रहे हैं। लिहाजा उनका भी स्वाभाविक तथा जन्म सिद्ध अधिकार है कि जनता उन्हें नेता माने। जबकि उन्हें राजनीतिक सामाजिक क्षेत्र में जनता की मान्यता प्राप्त है या नहीं। इसका ख्याल करना वे मुनासिब नहीं समझते । हाँ इस प्रवृत्ति को आज भारत के साथ–साथ उ0प्र0 में बखूबी देखा जा सकता है। इसे हम आज की व्यंगात्मक भाषा में पैराशूटी नेता (च्ंतंबीनजम स्मंकमतेीपच) कह सकते हैं जो ऊपर से सीधे और कहीं भी बिना पंक्ति में अपनी प्रतीक्षा किये, वरिष्ठों को धक्का देकर सबसे आगे खड़े दिखने की चेष्टा करते हैं। इस प्रकार के नेतृत्व को पार्टी के कुछ निहित स्वार्थी नेता, जो उस परिवार विशेष के ज्यादा करीब होते हैं उन्हें प्रयोजित प्रचरित तथा समर्थन दिलवाने की कोशिश करते हैं।

इस प्रकार के नेताओं की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उनके तथाकथित परिवार की राजनीतिक पकड़ क्षेत्र विशेष में कितनी है। ऐसे में कुछ सफल भी हुए हैं, कुछ असफल भी। आज काँग्रेस के नेहरू इंन्दिरा गाँधी परिवार के श्री राहुल गाँधी, प्रियंका गाँधी उ0प्र0 की समाजवादी पार्टी के प्रमुख थे। मुलायम सिंह यादव के पुत्र श्री अखिलेश यादव तथा म0प्र0 का सिन्धिया परिवार आदि का नाम उपरोक्त प्रकार के नेताओं में शुमार किया जा सकता है।

(8) अत्यधिक नेतृत्व – आज उ0प्र0 में हमें कुछ पंजीकृत अपराधी भी तथाकथित नेता बने हुए दिखाई दे रहे हैं, हालांकि इस प्रकार के नेतृत्व का एक क्षेत्र विशेष में ही प्रभाव होता है जो संकुचित तथा पूरी तरह नकारात्मक होता है। जो किसी एक विशेष नकारात्म्क कारण से जीत हासिल कर विधायी सदन तक की यात्रा करते हैं। ऐसे नेतृत्व के प्रति जनता का कोई आंतरिक लगाव नहीं होता है। ऐसे अपराधी नेता उ0प्र0 के लगभग सभी दलों में आसानी से देखे जा सकते हैं। इनकी दल–बदल की गति अतितीव्र होती है। इनकी आपराधिक पृष्ठभूमि एवं इतिहास के चलते उन्हें किसी न किसी सत्ताधारी दल से जुड़ा रहना अपरिहार्य हो जाता है। उ0प्र0 में वर्तमान में श्री मुखतार अंसारी अफजाल अंसारी (दोनों बसपा) गाजीपुर तथा वाराणसी तथा श्री डी0पी0 यादव, अतीक अहमद (इलाहाबाद), रमाकान्त यादव (एम. पी.), उमाकांत यादव इत्यादि नेताओं की वर्तमान पार्टी बताना नामुमकिन हो जाता है। जो कई बार उ0प्र0 विधान सभा तथा सम्मानित लोकसभा के सदस्य रह चुके हैं। यह सही है कि इस प्रकार का नेतृत्व बहुत टिकाऊ और स्थायी नहीं होता है जो कभी भी धाराशायी हो जाता है।

करिश्मा प्रधान नेतृत्व :–

करिश्मा प्रधान नेतृत्व की धारणा का प्रतिपादन मैक्स वेबर ने किया है। वेबर ने लिखा है, "करिश्मा प्रधान नेतृत्व किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व, अमानवीय या कम असाधारण शक्तियों या गुणों से मुक्त समझा जाता है। ये गुण साधारण मनुष्यों में नहीं पाये जाते है, इन्हें मूलतः दैनिक माना जाता है और इनके आधार पर इससे सम्पन्न लोगों को नेता कहा जाता है।"

इस परिभाषा में दो तत्व उपस्थित हैं –

1. करिश्मा प्रधान व्यक्ति में प्रसिद्धि उत्पन्न करने वाली कुछ विशेषतायें सन्निहित होती है।

2. इन विशेषताओं को वे इज्जत की दृष्टि से देखते हैं उसका अनुयायी कहा जाता है। उदाहरण के लिये करिश्मा प्रधान सम्बन्ध में 'अ' 'ब' की अगुवाई करने में इसलिये सफलता प्राप्त करता है कि 'ब' समझता है कि 'अ' की बात मानना उसकी उसका कर्त्तव्य है क्योंकि 'अ' में अगुवाई करने के लिये विशिष्ट वैयक्तिक गुण मौजूद है। वेबर के अनुसार करिश्मा प्रधान सम्बन्धों की निम्नलिखित विशेषतायें हैं।

1. अनुयायी अपने नेता के प्रति पूर्ण 'वैयक्तिक भक्तिभावना' का प्रदर्शन करते है।

2. नेता के अनुयायियों के बीच स्पष्ट श्रृंखला का अभाव होता है एवं अनुयायियों का चुनाव संवेगात्मक विश्वास के आधार पर होता है, इसका दरवाजा सबके लिये खुला होता है।

3. करिश्मा प्रधान आन्दोलन में प्रशासकीय अंगों का अभाव होता है। यह संवेगात्म्क सामुदायिक सम्बन्धों पर आधारित होता है।

4. आर्थिक दृष्टिकोण से करिश्मा प्रधान सम्बनध अबुद्धिवादी होता है चूँकि इसके अनुयायी उद्देश्यों की प्राप्ति

www.ignited.in

के सिलसिले में अपने गुजर बसर के लिये आर्थिक क्रियाओं से नियमित आय की प्राप्ति को घृणा की दृष्टि से देखते हैं।

बेवर के अनुसार, इस करश्मिा प्रधान सम्बन्ध के दो भाग हैं – (1) माध्यम (2) संदेश। माध्यम से नेता का बोध होता है, जबकि सन्देश से नेता के आदेशों का। बेवर के अनुसार, करिश्मा प्रधान सम्बन्ध की मूलभूत विशेषता यह है कि नेता के आदेशों के औचित्य का स्रोत माध्यम उनका गुण है। बेवर ने इस बात पर बल दिया है कि अनुयायी सदा नेता के गुणों के कारण उसके आदेशों का पालन करते हैं व इस सम्भावना को नजरअंदाज कर देते हैं कि वे माध्यम के बदले वस्तुतः संदेश के प्रति क्रियाशील हो रहे हैं।

बार्सली के नेृतत्व के सम्बन्ध में अपने विश्लेषण में मैक्स वेबर के करिश्मा प्रधान संचार को पूर्णतः स्वीकार किया है। उसने वेबर की अपेक्षा माध्यम से अधिक संदेश पक्ष को ही महत्व दिया है। उसके सूत्रीकरण के अनुसार 'ब' 'अ' का अनुयायी है। चूँकि 'अ' 'ब' की कतिपय संवेगात्मक प्रवृत्तियों को प्रभावित कर सकता है तथा 'ब' के कतिपय मूल्यों को व्यावहारिक रूप प्रदान कर सकता है। इस प्रकार के अध्ययनों में करिश्मा प्रधान नेताओं के सामान्यतः असंतुलित व झक्की किस्म के व्यक्तियों के रूप में चित्रित किया गया है, जिन्हें नेता के रूप में इसलिये स्वीकार किया जाता है कि उनके संदेश समाज के लिये आवश्यक होते है। उनसे भी अधिक लोग नेता इसलिये नहीं बन पाते हैं कि उनके संदेशों में वह संवेगात्मक आकर्षण नहीं होता। इस प्रकार के अध्ययनों की एक और आवश्यक विशेषता यह है कि अनुयायी को ही नेता का सर्जक माना जाता है, परन्तु इन अध्ययनों में वेबर की धारणा वास्तविक रूप से उल्टी प्रतीत होती है। उदाहरण के लिये यदि माध्यम को नजरांदाज कर केवल संदेश पक्ष पर ही बल दिया जाये तो नेतृत्व सम्बन्धी सभी उदाहरण करिश्मय प्रधान लगेंगे। इस प्रकार करिश्में की धारणा को खींचकर इतना विस्तृत बना दिया गया है कि उसमें सत्ता का बोध कराने वाले व्यक्तिगत प्रभावों के सभी मामले सम्मिलित कर लिये गये है। इसके परिणाम स्वरूप वासली यह निष्कर्ष लेता है करिश्मा व्यवहारों का विश्लेषण नहीं है, यह अपने आप में आधार है। परन्तु वेबर के अनुसार, करिश्मा व्यवहारों का एक विश्लेषण है। वेबर की इस धारण के आधार पर दूसरा अध्ययन एंटिजियोनी ने किया। उसके अनुसार : "करिश्मा किसी कर्त्ता की वह योग्यता है जिसके बल पर वह अन्य कर्त्ताओं की नीति पाक प्रवृत्तियों से ऊपर विस्तृत प्रभाव पैदा करता है जिस सीमा तक व्यक्तिगत गुणों से सभी भूमिका प्रेरित कार्यों के सम्पादन पर प्रभाव पड़ता है उस सीमा को देखते हुये यह कहना सम्भव है कि सभी कर्त्ताओं में कुछ न कुछ मात्रा में व्यक्तिगत प्रभाव या लोकप्रियता होती है, जिससे उनकी भूमिका–सम्पादन से सम्बद्ध योग्यता प्रभावित होती है। इस अर्थ में 'करिश्मा' शब्द के प्रयोग से कोई लाभ नहीं है, बल्कि यह अस्पष्टता को बढ़ावा है एवं अन्ततोगत्वा, यह मानने को हमें प्रेरित करता है कि उन सभी लोगों में द्वितीय महत्व के नेताओं को करिश्मा अदा करते हैं। यदि करिश्मा कोई गुण तो यह निश्चित रूप से एक दुर्लभ गुण है व इस तरह के गुण के सम्पन्न लोगों की संख्या जितनी कम है उतनी ही यह बात भी सत्य है कि करिश्मा प्रधान नेताओं के प्रति जनसमूह की भक्तिभावना का उदाहरण भी बहुत कम मिलता है। हिटलर पर किये गये हाल के अध्ययन में हिटलर को करिश्मा प्रधान नेता सिद्ध किया गया है। उसके समर्थकों की डायरियों, पत्रों इत्यादि के विश्लेषण से ऐसा पता चलता है कि उन लोगों ने हिटलर के चुम्बकीय व्यक्तित्व में ऐसा आकर्षण पाया था कि उसकी आज्ञाओं के पालन में अपना धर्म और ईमान समझते थे। इस अध्ययन से यह प्रकट होता है कि वह समुच्चय है जो अन्य साधारण लोगों में नहीं होता है।

भारत के संदर्भ में महात्मा गाँधी, पं0 जवाहर लाल नेहरू, सरदार बल्लभ भाई पटेल, डॉ0 राम मनोहर लोहिया, जयप्रकाश नारायण, कांशीराम, चन्द्रशेखर, श्रीमती इंदिरा गाँधी आदि नेताओं को करिश्मा प्रधान नेतृत्व की एक आभा, आकर्षण तथा अखिल भारतीय पहचान थी, जिसका काफी कुछ संवेगात्मक आधार था जो उनहें भारत में एक व्यापक पहचान और समर्थन दिलाने में कामयाब हुआ। इन्होंने अपने–अपने कालखण्ड में भारतीय राजनीति एवं राजनीतिक दलों को नई–नई शैली में परिभाषित तथा आयम देने की कोशिश की। इस प्रकार हम देखते हैं कि राजनीति में करिश्मावादी नेतृत्व की भी एक खास जगह थी।

आज भारत के संदर्भ में एक सर्वमान्य बात सामने आती है कि आज भारत में कोई भी नेता ऐसा नहीं है जिसका बाकई में अखिल भारतीय आधार (जनसमर्थन) हो प्रत्येक पर कोई न कोई दोष लगा हुआ है। आज क्षेत्रीय नेताओं की उपज तथा प्रगति में यह भी एक बड़ा कारण है चूँकि करिश्मा प्रधान नेतृत्व एक जन्मजात गुण से पैदा होता है, लिहाजा करिश्मावादी नेतृत्व को इसे तैयार नहीं किया जा सकता है। बल्कि ऐसा नेतृत्व समय–समय पर राजनीतिक क्षितिज पर स्वतः ही चमकता नजर आता है।

नेतृत्व (भारतीय संदर्भ में) –

जब किसी देश का नेतृत्व दागदार संकीर्ण तथा अक्षम हो जाता है तो उस देश में राजनीतिक संकट होना लाजिमी है। यूरोप का राजनीतिक नेतृत्व (जो स्थिरता प्राप्त है) सम्पन्न समाजों की भौतिक और आत्मिक स्थिरता का प्रतिबिम्ब है। अफ्रीकी देशों का राजनीतिक नेतृत्व वहाँ की सामाजिक अस्थिरता, आर्थिक दबावों और सामंती तानाशाह शासकों के द्वन्द से पैदा होता है। भारत की स्थिति इन दोनों के बीच है। वह स्थिर भी है, अस्थिर भी है। कह सकते हैं यह कुछ–कुछ पिछले दो हजार सालों के हिन्दू समाज की तरह है जिसके भीतर जड़ता और प्रगति की शक्तियों के बीच लगातार कशमकश बनी रही है। भारत के राजनीतिक नेतृत्व का चरित्र भी यही है। एक तरफ से देखें तो संकट है। दूसरी तरफ से देखें तो संकट नहीं है। न ही यह भारत के राजनीतिक नेतृत्व की रहस्मयता न ही उसका केन्द्रीय अन्तर्विरोध है, जिसके कारण वह गहरा होता जाता है।

कुछ समय पहले तक माना जाता था कि हिन्दूवाद का आक्रामक ज्वार ही भारत को प्रमुख राजनीतिक समस्या जो कट्टरवादी नेतृत्व (राष्ट्रवादी) को जन्म देता है। कुँअर प्रसून ने अपने लेख में भारत के राजनीतिक नेतृत्व को हिन्दूवादी बिलगाव के साथ–साथ अन्य जातीय विलगावों से भी जोड़ा है और यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि जब तक हम नकली विवादों से नहीं उभरेंगे, असली समस्याओं से लड़ने की फुरसत नहीं होगी। फलस्वरूप सर्वजन हिताय वाल राष्ट्रीय चरित्र का नेतृत्व पैदा नहीं हो सकता।

भानुप्रताप सिंह के अनुसार आज का भारतीय सिर्फ अपनी ऐशो आराम का सामान जुटाने के बारे में सोचता है। श्यामाचरण दुबे, भानुप्रताप सिंह तथा रमेश उपध्याय ने अपने लेख में बताया कि जब राजनीतिक नेतृत्व बिगड़ता है तो संसद, प्रशासन,

न्यायपालिका, चुनाव प्रणाली आदि सभी संस्थाओं का चेहरा दागदार होने लगता है। अरूण कुमार त्रिपाठी ने अपने एक लेख में कहा है कि वे दिन कब आयेंगे जब हमारा नेतृत्व राष्ट्रीय जीवन से सम्बन्धित महत्वपूर्ण प्रश्नों की अलग–अलग खानों में बँटकर देखने की खतरनाक आदत को छोड़ सकेगा ? यह सच है कि बिना समूहों और वर्गों के राष्ट्र नहीं बनता, किन्तु राष्ट्र भी कोई स्वतन्त्र इकाई है या नहीं ?

यह दिलचस्प है कि देश में इस समय नेता तो बहुत है, किन्तु नेतृत्व कहीं नहीं दिखाई देता है। प्रायः सभी राजनीतिक दलों का नेतृत्व थम चुका है और नयी चुनौतियों के सामने अपने को बेबस पाता है। नेतृत्व का यह शून्य भूलना नहीं चाहिए कि पश्चिम के शक्तिशाली समाजों का निर्माण वहाँ के लोकतांत्रिक नृेतत्व ने ही किया है। कम्युनिस्ट समाज भी तभी एक सुसंगठित और प्रगतिगामी रहे, जब तक उन्हें अच्छा नेतृत्व सुलभ रहा।

मौजूदा राजनीतिक व्यवस्था से असंतोष की प्रतिक्रिया में वैकल्पिक नेतृत्व की दो कोशिशें दिखाई पड़ी है। एक क्षेत्रवादी नेतृत्व जब राष्ट्रीय शक्तियों पतनशील सिद्ध हो रही हो, उस वक्त क्षेत्रवाद का उत्कर्ष लाजिमी है। इसने अपने नेता भी पैदा किये हैं किन्तु क्या यह नेतृत्व किसी भी मायने में बेहतर सिद्ध हुआ है ?

मधुलिमये ने इसकी विस्तृत छानबीन की है और वे बहुत ही निराशाजनक निष्कर्षों पर पहुँचे हैं। लोकतंत्र के पहले राज्य व्यवस्थ का संचालन राजा के जिम्मे था। राजा अच्छा तो राज्य अच्छा। राजा बुरा तो राज्य बुरा। अब राजा नहीं है। लेकिन क्या उसका स्थान पूजा ने ले लिया है। नहीं आज का नागरिक सिर्फ अच्छे और बुरे शासक के बीच चुनाव कर सकता है और एक को हटा कर दूसरे को गद्दी पर बैठा सकता है। लेकिन जब सभी शासक समान रूप से बुरे हो जायें तो चुनाव के उसके अधिकार का कोई अर्थ नहीं रह जाता है। साँप और बिच्छू में से किसे वोट दिया जा सकता है ? अतः लोकतंत्र के सही संचालन के लिए जरूरी है कि एक ऐसा राजनीतिककर्ता हमेशा बना रहे जो देश की समस्याओं का समाधान करना चाहता हो। राजा को यह अधिकार और कर्त्तव्य उत्तराधिकार में मिलता था। नागरिक नेतृत्व को यह गुण अपने भीतर से पैदा करना होगा। जिस देश के नागरिक उस तहर का नेतृत्व पैदा करने में असमर्थ होता है या जहाँ ऐसा नेतृत्व पैदा नहीं है, वहाँ की राजनीति क्या ऐसे जहाज की तरह भटकती नहीं रहेगी, जिसकी पतवार टूट चुकी है? सिर्फ आपसी प्रतिद्वंद्विता से समस्याओं का समाधान नहीं हो सकता है। शक्तियों वर्गों और समूहों से परे भी समुदाय के कुछ हित होते हैं तथा उनके लिए व्यक्तियों वर्गों तथा समूहों की कुर्बानी करनी पड़ती है। इसके लिये सहकार की व्यक्तियों को मजबूत बनाना जरूरी है। यह काम भी नेतृत्व का ही है। बल्कि नेतृत्व की असली कटौती तो यही है। भारत में राजनीतिक संकट इसीलिए उपस्थित हुआ है क्योंकि हमारे पास ऐसे नेतृत्व का अभाव है।

भारत में जातिवादी एवं साम्प्रदायिक नेतृत्व भी चिंता का विषय है। आज उ0प्र0 में इन दोनों तत्वों का सबसे ज्यादा बोलवाला **है**। इन दोनों ही आधारों पर आज यहाँ के प्रमुख दल, समाजवादी, बसपा तथा भाजपा अपना मूल जनाधर तलाशते हैं, शेष जनाधार को अन्य समूहों से प्राप्त करने की कोशिश कर रहे है। यहाँ विचारधारा के आधार पर केवल औपचारिकता ही पूरी की जाती है। व्यवहारिक रूप में उपर्युक्त तीनों दल जातीय तथा धार्मिकें आधार पर अपनी–अपनी जमीन बनाने की कोशिश करते प्रतीत होते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत तथा उ0प्र0 में आज ही नहीं बल्कि शुरू से ही नेतृत्व के सभी प्रकार रूप तथा शैलियाँ देखने को मिलती है। हाँ उनकी मात्रा में अन्तर हो सकता है। हाँ आज कुछ नेतृत्व की ऐसी शैलियाँ भी देखने को मिलती है जिन्हें राजनीति शास्त्री भी नेतृत्व की कोई शैली की संज्ञा दे इसमें सन्देह है। जिस प्रकार कालान्तर में मनुष्य की कुछ शकर नस्ले पैदा हो जाती है। उसी प्रकार आज भारत के साथ–साथ उ0प्र0 में भी नेतृत्व की शंकर नस्ले (भ्लइतपक) देखने को मिलती है।

सही नेतृत्व का सूखा –

भारत के प्रसिद्ध पत्रकार प्रियदर्शन के अनुसार आज भारतीय राजनीति जिन विदूपों का शिकार है, उनमें से नेतृत्व का संकट भी एक है। आज राजनीतिक दलों, विचारधाराओं कार्यक्रमों और आश्वासनों की बहुतायत के बावजूद ऐसा एक भी नेता नहीं है जो जनता में कोई राजनीतिक भरोसा जगा सके, उसे कोई सपना दे सके, किसी परिवर्तन का भी चेतना से जोड़ सके। प्रजातंत्र का मुखौटाका जो ताकते इस देश की सत्ता पर काबिज है या जिनमें यह सत्ता हासिल करने की आपाधापी है, वे भ्रष्ट, बेईमान, सामंतवादी, जातिवादी और कहीं – कहीं फ्रांसिस्तवादी मनोवृत्तियों और महत्वाकांक्षाओं से परिचालित है और उनके लिये इस देश की प्रजातांत्रिक प्रक्रिया महज एक सुविधा या एक सीढ़ी हो गई है जिसके मन चाहे आधारों पर टिकाकर ऊपर पहुँचने की कोशिश भी करते है। इतना ही नहीं वे एक तरह की जड़ता और दृष्टिहीनता के भी गहरे शिकार हैं और यथास्थितिवाद की गलियों में घूम रही उनकी राजनीति के पास भविष्य की कोई सड़क नहीं है, उसका कोई सपना नहीं है, कहीं–कहीं नायक की पोशाक पहन कर बैठे हुये विदूषक है, कहीं–कहीं संत का चोला ओढ़े पाखण्डी हैं और अधिकतर जगहों पर राजनीतिज्ञों की कुर्सी पर काबिज गुण्डे हैं।

अब सवाल उठता है कि नेतृत्व का संकट कहाँ से आया है। किसी भी व्यवस्था में कोई तत्व अपने आप नहीं चला आता है। कुछ ताकतें, कुछ प्रक्रियायें होती है, जो किसी स्थिति विशेष का कारण बनती है। स्पष्ट है कि नेतृत्व के इस शून्य को भरने के लिये उभरे छदम नेतृत्व के बीज इस व्यवस्था में पहले ही रोप दिये होंगे। अगर नेतृत्व की अवधारणा पर सम्यक ढंग से विचार किया जाये तो कई मुद्दे पर प्रश्न दिमाग में कौंधते हैं।

लोकतांत्रिक समाजों में राजनीतिक नेतृत्व कहाँ पैदा होता है ? क्या वह जनाकांक्षा की स्वस्थ अभिव्यक्ति के रूप में सामने आता है। या सिर्फ कुछ शक्ति केन्द्रों और दबाव समूहों की मारफत बने समीकरणों की उपज होता है। यह किन गुणों से परवारन चढता है, किन खासियतों के चलते जनता की उम्मीदों पर खरा उतरता है ? क्या यह विचारों या व्यक्तियों की ठोस समझ से आकार लेती है ? या राजनीतिक कार्यक्रमों और उनके सामाजिक नतीजों के मेल प्रचार के घोल के साथ झूठ जनाकांक्षा को गढ़ता है ? या व्यक्तियों और वेशों की निजी चमक मुद्दों पर हावी हो जाती है और नेतृत्व बन जाते है ? शायद ये सारी बातें एक साथ होती है और अलग–अलग स्थितियों में अलग–अलग स्थितियों में अलग–अलग समय में इनमें से कोई भी एक बात किसी नेतृत्व के लिये जगह बना देती है।

भारत के मौजूदा नेतृत्व संकट को समझने के लिये पहला सवाल यह उठता है कि आखिर क्यों कोई बड़ा नेता अपने बाद अपने वंश की छाया से अलग किसी अन्य प्रकार के नेतृत्व को फलने–फूलने का अवसर नहीं देता है ? जैसे नेहरू तथा नेहरू

वंश की छाया इत्यादि। सरदार पटेल भारतीय राष्ट्र राज्य के गठन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका के बाद भी अलग–थलग क्यों रह गये हैं ? या राजनीति के दूसरे दौर में क्यों काँग्रेस के ढेर सारे दिग्गज और अनुभवी नेता धराशायी होते चले गये तथा श्रीमती इंदिरा गांधी के नेतृत्व के शीर्ष पर बनी रही ? इसी प्रकार आगे राजीव जैसे अनुभवहीन नेता तक यह सिलसिले चलता रहा और जनता तथा काँग्रेसी राहुल तथा प्रियंका गाँधी वाड्रा की तरफ नजर लगाये हुये हैं। कहीं यह भारत को लोकतांत्रिक देह में निवास कर रही राजतन्त्रवादी आत्मा तो नहीं, जिसे नेहरू वंश की राजसी और कुलीन नायकत्व सुभाता रहा है ? आजादी के पहले महात्मा गाँधी और महात्मा गाँधी के बाद नेहरू निर्विवाद रूप से भारतीय जनता के बीच सबसे ज्यादा दुलारे नेता रहे हैं। इस जनता ने महात्मा गाँधी को एक ऐसे संत की तरह पूजा, जिससे आजादी की लड़ाई में एक सिपाही की भूमिका निभायी और वह नेहरू पर एक ऐसे राजकुमार के रूप में रीझती रही, जो उनकी लड़ाई लड़ने के लिये अपनी सुख सुविधाएं छोड़ उनके बीच चला आया था। नेहरू के व्यक्तित्व की छाया में काँग्रेस व्यक्ति केन्द्रित पार्टी होती चली गई। व्यक्ति केन्द्रित संस्थानों की वह नियति होती है कि उनमें विचार और विमर्श संभावनाएँ क्षीण तक होती चलती हैं। यह नियति काँग्रेस को भी झेलनी पड़ी। दुर्भाग्य से इस दौर में साम्यवादी और समाजवादी आन्दोलनों के मजबूत होने की ओर गुंजाइशें थी, वे भी समर्थ नेतृत्व के अभाव में बिखरती चली गयी। यह एक शोध का विषय है कि मजदूरों और किसानों की बहुलता वाले देश में जहाँ साम्यवादी आन्दोलन के खड़ी हो सकने की भरपूर संभावना थी, ऐसा क्यों नहीं हो पाया। एम.एम. राय और वी.टी. रनविरे जैसे दिग्गज साम्यवादी नेताओं के बावजूद श्रममार्गी सफल नहीं हो सके। दुर्भाग्य से भारत का साम्यवादी आन्दोलन शुरू से ही कई वैचारिक अतंर्विरोध के साथ–साथ व्यक्तिगत बिखरावों का शिकार भी रहा है। 1951 के बाद ही भारत में आठ कम्युनिस्ट पार्टियाँ हो चुकी थीं।

कुछ–कुछ यही स्थिति समाजवादी आन्दोलन की भी रही। हालांकि फिर भी इस आन्दोलन ने भारत की राजनीति में एक वैचारिक धार तो पैदा की ही और बहुत दूर तक डॉ0 लोहिया के नेतृत्व में एक सार्थक विकल्प गढ़ने का प्रयास भी किया। शायद 1950 के दशक में सक्रिय राजनीति से जयप्रकाश के संयास ने इस आन्दोलन को एक बड़े नेता से वंचित कर दिया वरना जयप्रकाश और लोहिया ने भारतीय राजनीति और समाजवादी आन्दोलन को एक धार दी होती।

डॉ0 लोहिया एक बड़े नेता थे। उनके पास भारतीय राजनीति की खालिस समझ तो थी ही इतिहास, दर्शन और ज्ञान के दूसरे क्षेत्रों में उनके खासे दक्षता ने उन्हें अपने दौर का एक महत्वपूर्ण चितंक बना डाला। वह एक स्वप्न दृष्टा भी थे। उनके पास यह सब कुछ था जो नेहरू के विकास के मॉडल और उनकी काँग्रेस को विस्थापित कर एक नयी व्यवस्था रचने के लिये पर्याप्त होता। उन्होंने भारतीय गणतन्त्र को संसद की अभिजात्यवादी सीमाओं से बाहर लाकर जनता के बीच स्थापित करने की सफल कोशिशें भी की और उसे नये व्यवहारवादी लोकतांत्रिक हथियार दिये। मगर लोहिया, जे.पी. की तरह जननेता कभी नहीं बन पाये। उनके अनुयायियों और भक्तों की एक बड़ी लम्बी और समर्पित कतार रही और उनके आन्दोलन ने भारतीय राजनीति को बहुत कुछ दिया था। दुर्भाग्यवश बाद में लोहिया वादियों ने लोहिया के साथ वही सलूक किया जो गाँधीवादियों और काँग्रेस ने गाँधी जी के साथ किया और इस तरह भारतीय राजनीति में सार्थक हस्तक्षेप की एक बड़ी सम्भावना अकाल मृत्यु, बल्कि आत्महत्या की शिकार हो गयी। आज लोहिया और समाजवाद के नाम लेवा उतने ही भक्त लुंजपुंज है जितने दूसरे दलों और विचारधाराओं के।

1969 में गैर–काँग्रेसीवाद के गर्भ से चरण सिंह की किसानपार्टी, भारतीय क्रांतिदल का जन्म हुआ, जिसने उ0प्र0 में जनसंघ और समाजवादियों दोनों को विस्थापित कर उनकी जगह ले ली। 1967–72 की अवधि राजनीतिक दलों की दृष्टि से अराजकता की अवधि थी। डॉ0 लोहिया के गैर–काँग्रेसवाद भी दिशा भ्रष्ट हो गया। लेकिन काँग्रेस को उ0प्र0 में सत्ता से हाथ धोना पड़ा और केन्द्र में भी उसकी शक्ति क्षीण हो गई। फिर काँग्रेस के भीतर नेतृत्व की लड़ाई चली और काँग्रेस का विभाजन हो गया। उधर संविद सरकारों के आये दिन बनने–टूटने का सिलसिला बना। डॉ0 लोहिया की मृत्यु के बाद गैर–काँग्रेसवाद भटक गया और सत्ता की अंधी दौड़ में बदल गया।

वस्तुतः 1967 के आम चुनावों में भारत के समाजवादी नेतृत्व ने अपने सुनहरे दिन देखे। उस समय के सपनों से मोहभंग हो गया थ। इस समय पूरे देश में एक वैचारिक हलचल थी। मगर लोहिया के देहावसान और भारतीय राजनीति में श्रीमती इंदिरा गाँधी के अभ्युदय ने फिर इस उथल–पुथल को एक उल्टी दिशा दे दी।

श्रीमती गाँधी के पास कोई दर्शन नहीं था, बल्कि उनमें एक गहरी महत्वाकांक्षा थी और उसे पूरा करने के लिये उन्होंने पर्याप्त इच्छाशक्ति और दुस्साहस तक का परिचय दिया। नेहरू वंश का वारिस होने के बावजूद उनकी शुरूआत बेहद लो–प्रोफाइल थी और वे काँग्रेसी सिंडीकेट के दिग्गज नेताओं के झगड़े के बीच सत्ता के शीर्ष पर बैठायी गयीं। मगर शीघ्र ही उन्होंने वैचारिक टकराव की लोहियावादी शैली की व्यक्तिगत टकराव में बदल दिया। समाजवाद का नारा भी उनके बेहद आकर्षण रखता था। जिसको हम प्रिवीपर्स, बैंकों के राष्ट्रीयकरण, इत्यादि में देख सकते हैं। श्रीमती गाँधी अपनी तमाम खूबियों के बाद भी अपने पिता के पद की बराबरी कभी नहीं कर सकती है। इन सभी घटनाओं का उ0प्र0 के राजनीतिक नेतृत्व पर समान प्रभाव पड़ता रहा, यहाँ भी काँग्रेस के वही लोग (नेता) नेृतृत्व की बागडोर थामे रहे जिनको नेहरू–इंदिरा वंश का बादहस्त प्राप्त रहा। बाद में लोहियावादी राजनीति के एक कालखण्ड में यहाँ भी परिवर्तन होता रहा है।

निष्कर्षतः कहा जाता है कि आजादी के पहले दो दशकों में राष्ट्रीय पार्टियों का (जो अकेले था मिलकर काँग्रेस का विकल्प दे सकती थी) समुचित विकास नहीं हो पाया, हाँ उ0प्र0 के क्षेत्रीय दलों ने यह कोशिश की पर वे भी ज्यादा सफल नहीं हो सके जैसे समाजवादी दल भारतीय क्रान्तिदल आदि।

अखिल भारतीय स्तर पर गैर–काँग्रेसी राष्ट्रीय पार्टियों के रूप में समाजवादी पार्टी, साम्यवादी पार्टी और भारतीय जनसंघ थी। इनमें समाजवादी पार्टी ही स्वतन्त्रता आन्दोलन की राष्ट्रीय धारा की पार्टी थी। साम्यवादियों के साथ स्वतन्त्रता आंदोलन से विश्वासघात करने का कलंक चिपका था। जनसंघ उस राष्ट्रीय स्वयं सेवक का राजनीतिक मंच था जिसके लोगों ने आजादी के आन्दोलन में न सिर्फ कोई भाग लिया, बल्कि जो हिटलर जैस बदनाम तानाशाहों के गुण गाते थे और राष्ट्रीय नेताओं को गालियाँ देते थे और जिन पर गाँधी की हत्या का आरोप लगा था। हालांकि आर्य समाजियों, रजवाड़ों, छोटे दुकानदारों,

व्यापारियों तथा सरकारी कर्मचारियों में भी उसकी जड़ें नयी किन्तु राष्ट्रीय पार्टी बनने के लिए जो योग्यताएँ जनसंघ को चाहिए थी, वे उसके पास कभी नहीं फटकी। उदाहरणार्थ, उसके पास कोई आर्थिक कार्यक्रम नहीं रहा, बाद में उसके नेता कॉंग्रेस की आर्थिक नीतियों को प्रबल समर्थक बन गये। जनसंघ की कोई सामाजिक नीति नहीं रही। मुस्लिम तथा दलित विरोध उनके स्थायी मुद्दे थे। वह आरक्षण का भी विरोध करती थी। फिर भी कॉंग्रेस विरोध के कारण चिर असंतुष्ट मध्यम वर्ग इससे जुड़ गया। 1967 में केवल गैर–कॉंग्रेसवाद के तहत उसे 9.4 प्रतिशत वोट मिला। बाद में भाजपा के रूप में उसका वोट फिर कम हो गया और केवल 1989 तथा 1991 में लोकसभा का उ0प्र0 विधानसभा चुनावों में उसका वोट प्रतिशत अच्छा हुआ। जब राममंदिर का जुनून खड़ा किया गया।

इसके बाद 1974 से छात्र आन्दोलन जे0पी0 की शिकस्त, संजय ब्रिगेड की ज्यादतियों और आपातकाल की दुःखद यादों के बीच 1977 में पहली बार केन्द्र की सत्ता किसी गैर–कॉंग्रेसी सरकार ने हासिल की और दूसरी आजादी के रूप में पूरे देश ने इसका जश्न मनाया। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत में व्यक्तिवादी नेतृत्व की छाया स्पष्ट दिखती है। जब तक व्यक्ति विशेष रहता है तभी तक उसकी धमक सुनाई देती है तथा विचाराधारात्मक नेतृत्व गौण हो जाता है।

लोकनायक जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में जो सम्पूर्ण क्रान्ति का सपना दिया गया। वही इस दूसरी आजादी के बाद भी फलीभूत नहीं हो सका। शायद इसलिए कि जे0पी0 ने अपने व्यक्तित्व के जादू से जिस गैर–कॉंग्रेसी एका को सम्भव बनाया, उसके वैचारिक आधार एक तक नहीं थे। सत्ता हासिल करने के बाद उन्होंने जे0पी0 को तो विस्मृत कर ही दिया, व्यक्तिगत महत्वकांक्षाओं की टकराहट में इस तरह उलझे कि बिखर कर रह गये। भारतीय जनसमुदाय के लिए यह एक बड़ा झटका था। इसने व्यवस्थागत बदलाव के प्रति भारतीय जनता के मोह भंग को भी चरम तक पहुँचा दिया। राजनीति में व्याप्त मूल्यहीनता और व्यक्तिवादिता के इस निर्लज्ज प्रदशर्न की टीस भारतीय प्रजातंत्र अभी तक झेल रहा है।

1977 में भी उ0प्र0 तथा केन्द्र में जनता पार्टी के रूप में कॉंग्रेस का विकल्प देने की कोशिश की गयी जो आपसी महत्वाकांक्षा तथा अन्तर्विरोध के कारण सफल नहीं हुआ।

1980 के बाद का भारतीय नेतृत्व नकारात्मक के पापों पर टिका रहा है। जनता सरकार के नेतृत्व की असफलता ने उन्हीं श्रीमती इंदिरा गाँधी को दुबारा देश का नेतृत्व मिला गय जो कल तक सारे प्रजातांत्रिक मूल्यों की दुश्मन नजर आ रही थीं और जिनकी वापसी सम्भव नहीं लग रही थी। 1980 के बाद का नेतृत्व आम आदमी से कटता गया तथा सामाजिक, आर्थिक बदलाव की चाह से दृढ़ता, नकली मुद्दों और नकारात्मक लहरों की गोद में चला गया। उसी समय कश्मीर, पंजाब और असम जैसी समस्याओं का उभार देखा गया और इसके पीछे बड़ी गंदी राजनीति देखी गई। 1984 में अपने ही अंगरक्षकों की शिकार श्रीमती गाँधी के निधन के बाद नेतृत्व का सवाल एक बार फिर उठा और करिश्माई ढंग से हल हो गया। राजीव गाँधी प्रधानमंत्री बने और 1984 के ही चुनावों में अपनी माँ के निधन से पैदा हुई सहानुभूति लहर पर सवार हो संसद में अभूतपूर्व बहुमत से आये।

अपने शुरूआती दिनों में राजीव गाँधी ने यह आभास दिया कि उनका नेतृत्व अपनी माँ के राजनीतिक नेतृत्व से अलग एक शालीन नेतृत्व का रास्ता चुन रहा है। लोगों ने उनके नेतृत्व में उनके नाना (पं0 नेहरू) की छवि को ढूँढने की कोशिश की। मिजोरम, पंजाब, असम जैसी समस्याओं को बातचीत के जरिये सुलझाने के उनके प्रयासों, भ्रष्टाचार को समाप्त करने की उनकी घोषणाओं ने उन्हें बड़ी लोकप्रियता दिलाई। कप्यूटर, जनसंचार और आधुनिकीकरण के जरिये देश को 21वीं सदी में ले जाने का सपना राजीव गाँधी के नेतृत्व के पास भी था। मगर उनके नेतृत्व के पास भी इस सपने को अमली जामा देने की वैचारिक समझ का अभाव था। समस्याओं को उन्होंने जितना सरल समझ लिया था, वे उतनी थीं नहीं। नतीजन जल्द ही असफलताओं से उनका सामना पड़ने लगा। फिर उनके साथी द्वारा ही उन पर भ्रष्टाचार के आरोपों ने सहसा उन्हें एक नौजवान और सपने देखने वाले प्रधानमंत्री से चिड़चिड़े और चालाक अधड़े में उन्हें बदल दिया। उन्हीं के सिपहसलाहकार विश्वनाथ प्रताप सिंह उनके प्रतिद्वन्दी बनकर उभरे और 1989 में दूसरी गैर–कॉंग्रेसी सरकार का नेतृत्व उन्हें सौंपा गया। इस नेतृत्व के पास भी वैचारिक तौर पर कोई नयी चीज नहीं थी और सबसे दिलचस्प ढंग से यह धुर वामपंथी और धुर दक्षिणपंथी दलों के तालमेल से लगभग डेढ़ साल तक चलती रही।

मगर यह मतकौशल न स्थायी होना था, न हुआ, बल्कि इस बार शुरू हुए व्यक्तिवादी झगड़ों ने कई ऐसे अतिवादी उभार दिये, जिनसे भारतीय सामाजिकता को गहरे घाव झेलने पड़े। अंततः यह कह सकते हैं कॉंग्रेस का विकल्प बनने का तीसरा प्रयोग 1989 में हुआ। जनता दल, जनमोर्चा, भाजपा और वामपंथियों ने आपस में तालमेल कर चुनाव लड़ा और आशा के अनुरूप कॉंग्रेस सत्ता से विस्थापित हुई। लेकिन भाजपा और वामपंथी सरकार में शामिल होने के लिए तैयार नहीं हुए। उन्होंने बाहर से समर्थन दिया। यहाँ भी जनता पार्टी जैसी गलतियाँ दुहरायी गयीं। आपसी षडयन्त्र तथा अपने–अपने जनाधार की चिंता ने साझेदारी टूट गयी। वी.पी. सिंह में भी नेतृत्व शक्ति का अभाव था। कुर्सी के मोह ने उन्हें किसान नेता देवी लाल को बाहर निकलने के लिये विवश कर दिया। फिर देवी लाल की काट के लिए उन्होंने मण्डल रिपोर्ट को लागू किया, जिसे वे नौ महीने से टाल रहे थे, क्योंकि पूर्व कॉंग्रेसी होने के नाते सामाजिक न्याय में उनकी कभी आस्था नहीं रही थी। मण्डल रिपोर्ट लागू होने से एक तरफ जनता दल को आरक्षण विरोधियों ने बदनाम किया वहीं भाजपा को अपने जनाधार के टूटने का खतरा लगा लिहाजा उसने राम मंदिर का मुद्दा उठाकर धार्मिक उन्माद पैदा कर दिया। रथयात्रा करने वाले आडवाणी को गिरफ्तार करना पड़ा तो भाजपा ने जनता दल सरकार से समर्थन वापिस ले लिया। वी. पी. सिंह ने तत्काल चुनाव कराने के बजाय राष्ट्रपति से 15 दिन का समय ले लिया। उनका अनुमान था कि इन 15 दिनों में वे मुलायम सिंह को जो उ0प्र0 के जनता दल के मुख्यमंत्री थे, निकाला भाजपा का समर्थन दोबारा प्राप्त कर लेंगे। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। जनता दल का एक धड़ा बागी हो गया और चन्द्रशेखर के नेतृत्व में केन्द्र में तथा मुलायम सिंह के नेतृत्व में तथा कॉंग्रेस के समर्थन से उ0प्र0 में सरकार बनी। चूँकि चन्द्रशेखर सरकार को कॉंग्रेस के समर्थन से बनी थी। इसीलिए कॉंग्रेस ने भी चन्द्रशेखर को इसी तरह ब्लैक किया। जिस तरह भाजपा ने वी.पी. सिंह को किया था। इसके बाद भी जोड़–तोड़कर गैर–कॉंग्रेसी सरकारें बनी पर वे स्थायी विकल्प के लिए गम्भीर नहीं थी। हाँ भाजपा ने जरूर राष्ट्रीय पार्टी के रूप में कॉंग्रेस का विकल्प देने की कोशिश की है। लेकिन उ0प्र0 में सपा का बसपा ने यह कोशिश की पर उनका नेतृत्व भी संकीर्णता ग्रस्त है।

www.ignited.in

1991 के मध्यावधि चुनावों के बीच ही राजीव गाँधी की हत्या कर दी गई और सत्ता के करीब पहुँची काँग्रेस के सामने नेतृत्व का संकट फिर पैदा हो गया। इस अनिर्णय की हालात में वी.पी. नरसिंहराव को उनकी वरिष्ठता के आधार पर नेतृत्व मिल गया क्योंकि राजीव परिवार में, सोनिया गाँधी अभी सदमे से उभरी भी नहीं थी और वैसे भी वह पूर्व से ही राजनीति में आने की इच्छुक नहीं थीं। मगर इस दौर की राजनीति के हिस्से में सिर्फ साम्प्रदायिक और जातीय ध्रुवीकरण ही सामने आया है। अब तक के सबसे बड़े भ्रष्टाचार के नमूने। इस बीच बावरी मस्जिद टूटी, अब तक सबसे बड़े आर्थिक घोटालों का पता लगा, बम्बई जैसे सैकुलर शहर में दंगों और बम विस्फोटों का सिलसिला चला। मगर भारत का राजीनतिक नेतृत्व इन सबके प्रति बेखबर और संवेदनहीन प्रतीत होता है।

उसके बाद 1996 में भारत में दक्षिणपंथी भाजपा ने भारत के नेतृत्व को हासिल करने की कोशिश की, लेकिन उसे समर्थन नहीं मिला, लिहाजा उसे सत्ता से जाना पड़ा। वह मात्र 13 दिन ही भाजपा सत्ता में रह सकी। देश इस समय अस्थिरता के दौर से गुजरा तत्पश्चात तथाकथित तीसरे मोर्चे को वही जोड़–तोड़ तथा जातीय ध्रुवीकरण के आधार पर नेतृत्व मिला और कम्युनिस्टों के समर्थन से तथा लालू यादव व मुलायम सिंह यादव के टकरावों के बीच कोई बीच का व्यक्ति तलाशा गया और कर्नाटक के एच.डी. देवगौड़ा को देश की बागडोर सौंपी गई। वे प्रधानमंत्री जरूर थे पर इन पर प्रभाव अतिरिक्त क्षेत्रीय व्यक्तियों का था। नेतृत्व पर प्रकारान्तर से दबाव पड़ता रहा और उसके बाद कुछ समय के लिए इंद्र कुमार गुजराल को देश की बागडोर सौंपी गई, लेकिन कुछ ही दिनों में यह गठबंधन अन्तर्विरोध, निहित स्वार्थ का शिकार हुआ और धाराशाही हो गया।

उनके बाद भारत की दक्षिणपंथी पार्टी तीसरे मोर्चे के अन्य घटकों के साथ 19 मार्च 1998 को सरकार का नेतृत्व हासिल हुआ। इस भाजपा मंत्रिमण्डल में 13 दल सम्मिलित थे और अंततः जयललिता ने सरकार से अपना समर्थन वापस ले लिया और केवल 13 महीनों के बाद ही 1999 में दूसरी बार भाजपा सरकार का अन्त हो गया।

1999 के लोकसभा चुनावों में अटल बिहारी बाजपेयी के नेतृत्व में एन.डी.ए. गठबन्धन सत्ता में आया, पर सरकार भाजपा की दक्षिणपंथी विचारधारा पर न चलकर एन.डी.ए. के साझा कार्यक्रम पर चली और भारत का दक्षिणपंथी जनादेश की शाइनिंग इंडिया के अपने नारे के समक्ष पराजित हो गया। उसके बाद 2004 में 14वीं लोकसभा चुनाव के बाद काँग्रेस ने पहली बार यू.पी.ए. नाम से साझा सरकार का नेतृत्व किया। जहाँ तक साझा नेतृत्व के जन्म या उदय का सवाल है तो यहाँ दोष मतदाताओं का नहीं बल्कि दल प्रणाली का है।

वस्तुतः स्वतन्त्र भारत की राजनीतिक नेतृत्व की यह त्रासदी रही है कि वह हमेशा व्यक्ति केन्द्रित रही। उससे भी बुरा यह हुआ कि शिखर पर बैठे इन व्यक्तियों के कभी भविष्य की नेतृत्व पंक्ति तैयार करने की आवश्यकता महसूस नहीं की। श्रीमती गाँधी और राजीव ने तो ऐसे नेताओं को पनपने तक नहीं दिया जिनका अपना कोई राजनीतिक कद हो सकता था। ऐसी व्यक्ति केन्द्रित राजनीति का एक खामियाजा यह भी होता है कि संगठन भी महत्वहीन होते जाते हैं। दुर्भाग्य से दूसरे दलों ने भी इसी काँग्रेसी संस्कृति का अनुसरण किया। यहाँ भी दल और विचार व्यक्तियों की महत्वाकांक्षाओं के मुताबिक चल रहे हैं या जोड़–तोड़ जा रहे है। इस राजनीतिक आपाधापी में सबसे बड़ी दुर्गति विचारों और विचारधाराओं की हुई। अरदसल कोई भी विचार तभी हथियार बनता है जब वह समर्थ नेता के हाथों में पड़ता है। दुर्भाग्य से आज कोई ऐसा राजनीतिक नेता हमारे बीच नहीं है। वे सभी जोड़–तोड़ निहित स्वार्थ धार्मिक भावनाओं, जातीय गुटबाजी इत्यादि संकीर्ण आधारों पर नेतृत्व पैदा करने की कोशिश कर रहे हैं। प्रदेशों का नेतृत्व और भी संकीर्णताओं से ग्रसित है। यहाँ एक प्रकार का तदर्थ नेतृत्व सामने आ रहा है। आज गाँधी, लोहिया और मार्क्स के नाम लेने वाले सबसे अविश्वसनीय हो चुके हैं। अगर हम उ0प्र0 की वर्तमान राजनीति पर नजर डाले तो स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ राष्ट्रीय नेतृत्व कमजोर है। क्षेत्रीय नेतृत्व का बोलवाला है। इस क्षेत्रीय नेतृत्व के पास कोई विश्वस्तरीय सोच नहीं है, उसकी कोई विदेश एवं अर्थनीति नहीं जिससे वह भारत को विश्व से जोड़ सके। कुल मिलाकर क्षेत्रीय नेतृत्व जोड़–तोड़ पर आधारित है और वह केन्द्रीय सत्ता में पहुँचने भर की सोच रखता है। नेतृत्व की विश्वसनीयता का यह संकट आज के भारत का सबसे बड़ा राजनीतिक संकट है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. दकतमू भ्मलूवतक रू च्ंहम 350

2. सत्य प्रकाश : ग्रामीण समाज शास्त्र

3. भारत का राजनीतिक संकट, संपादन, राजकिशोर, वाणी प्रकाशक, नई दिल्ली, पेज 89

4. ल्वहमदकतं ैपदही रू डवकमतदपेंजपवद व ि प्दकपंद ज्तंकपजपवदेए च 188.189ण

5. श्रण्ण् भ्पजमसवबा रू स्मंकमतेीपच पद ं छवतजी प्दकपंद टपससंहम दृ ज्व ेंम ैजनकपमे फनवजमक इल च्ंता ेदक ज्पदामदए च्ण् 395 दृ 414ण

6. त्ंदह छंजी रू बिंदहपदह च्ंजजमतदे व ि त्नतंस स्मंकमतेीपच पद न्ण्चण्

7. कुँवर प्रसून (लेख जिन्हें पाकिस्तान चाहिए) भारत का राजनीतिक संकट (सम्पादन रजाकिशोर), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पेज 97–101

8. भारत का राजनीतिक संकट – संपादन , राजकिशोर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पेज 20, 24, 102

9. भारत का राजनीतिक संकट : संपादन, राजकिशोर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पेज 90–91.

10. भानुप्रताप सिंह तथा अन्य, यह संकट हमें कहाँ ले जायेगा (भारत का राजनीतिक संकट), राजकिशोर, वाणी प्रकाशन, पेज 24, 90, 103

11. प्रियदर्शन, नेतृत्व का सूखा (भारत का राजनीतिक संकट), संपादक राजकिशोर वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994, पेज 21

12. प्रियदर्शन नेतृत्व का सूखा (भारत का राजनीतिक संकट) राजकिशोर वाणी प्रकाशन, पेज 63–66.

13. सईद एस.एम. भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, भारत बुक सेन्टर, लखनऊ, 2000, पेज 257.

14. मस्तराम कपूर, राष्ट्रीय विकल्प कैसे बने। भारत का रा0सं0, राजकिशोर, वाणी प्रकाशन, पेज 142–144

15. राजकिशोर संपादित : भारत का राजनीतिक संकट, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994, पेज 68